प्रेम-पूर्णिमा

लेखक—

सेवासदन, सप्त-सरोज, महात्मा शेखसादी,

नवनिधि आदिके रचयिता

स्व० "प्रेमचन्द"

—*—

प्रकाशक—

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी

ज्ञानवापी, काशी

सातवीं बार] २००२ [मूल्य ३)

प्रकाशक—
श्रीबैजनाथ केडिया
हिन्दी पुस्तक एजेन्सी
ज्ञानवापी, काशी

शाखाएँ—
२०३, हरिसन रोड कलकत्ता
दरीबा कलाँ, दिल्ली
बाँकीपुर, पटना

मुद्रक—
रामशरणसिंह यादव
वणिक प्रेस,
साक्षी विनायक, काशी

निवेदन

हम आज हिन्दी संसारकी सेवामें हिन्दी पुस्तक एजेन्सी के "प्रेमपूर्णिमा" नामक पुस्तकका सातवां संस्करण सप्रेम समर्पित करते हैं।

प्रेम-पूर्णिमामें 'प्रेमचन्द" जीकी पन्द्रह चुनी हुई गल्पें हैं। इनका गुण दोष दिग्दर्शन प्रकाशककी वर्णन शक्तिके परे है। हाँ, इतना निस्सकोच कहा जा सकता है कि भारतकी अन्युन्नतभाषाओंमें भी इससे अच्छी गल्पें बहुत कम हैं। बङ्गभाषाका साहित्य गल्पों और उपन्यासोंके नाते विशेष सम्पन्न गिना जाता है पर उसमें भी ऐसी अच्छी गल्पें लिखनेवाले एक दो ही हैं। यह हमारी कपोल कल्पना नहीं, बङ्गभाषाके वर्त्तमान उपन्यास सम्राट प्रसिद्ध गल्प लेखक श्रीशरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय महाशयकी सच्ची राय है। हिन्दीमें बङ्गभाषासे अनुवाद होकर जो दो चार गल्प-संग्रह निकले हैं उन्हे मुकाबलेमें रखकर पाठक इस कथनकी सचाईकी परीक्षा कर सकते हैं। मराठी और गुजरातीमें तो बड़ी शीघ्रतासे "प्रेमचन्द्र" जीकी सब गल्पोंका अनुवाद हो रहा है।

हिन्दी संसारको "प्रेमचन्द" जीपर गर्व होना चाहिये जिनकी लेखनीके प्रतापसे गल्प और उपन्यासोंमें हिन्दी अपनी दूसरी बहनोंके बराबर बनती जा रही है।

जिन लोगोंमें गल्पोंके गुणदोष जाँचनेकी शक्ति है, उनसे हमारा विनीत निवेदन है कि वे इस पुस्तककी उचित समालोचना करनेकी कृपा अवश्य करें।

—प्रकाशक

सूची

प्रेम पूर्णिमा

ईश्वरीय न्याय—

[१]

कानपुरके जिलेमें पण्डित भृगुदत्त नामक एक बड़े जमींदार थे। मुन्शी सत्यनारायण उनके कारिन्दा थे। वह बड़े स्वामिभक्त और सच्चरित्र मनुष्य थे। लाखों रुपयेकी तहसील और हजारों मन अनाजका लेन-देन उनके हाथमें था, पर कभी उनकी नीयत डाँवाडोल न होती। उनके सुप्रबन्धसे रियासत दिनों-दिन उन्नति करती जाती थी। ऐसे कर्मपरायण सेवकका जितना सम्मान होना चाहिए, उससे कुछ अधिक ही होता था। दुःख सुखके प्रत्येक अवसरपर पण्डितजी उनके साथ बड़ी उदारतासे पेश आते। धीरे-धीरे मुंशीजीका विश्वास इतना बढ़ा कि पण्डित-जीने हिसाब-किताबका समझना भी छोड़ दिया। सम्भव है, उनमें आजीवन इसी तरह निभ जाती, पर भावी प्रबल है। प्रयागमें कुम्भ लगा तो पंडितजी भी स्नान करने गये। वहांसे लौटकर फिर वे घर न आये। मालूम नहीं, किसी गढ़ेमें फिसल पड़े या कोई जल-जन्तु उन्हें खींच ले गया, उनका फिर कुछ पता ही न चला। अब मुन्शी सत्यनारायणके अधिकार और भी बढ़े। एक हतभागिनी विधवा और दो छोटे-छोटे बालकोंके

सिवा पण्डितजीके घरमें और कोई न था। अन्त्येष्टि क्रियासे निवृत्त होकर एक दिन शोकातुर पण्डिताइनने उन्हें बुलाया और रोकर कहा—लाला! पण्डितजी तो हमें मँझधारमें छोड़कर सुरपुरको सिधार गये, अब यह नैया तुम्हीं पार लगाओ तो लग सकती है। यह सब खेती तुम्हारी ही लगायी हुई है। इससे तुम्हारे ही ऊपर छोड़ती हूँ। ये तुम्हारे बच्चे हैं; इन्हें अपनाओ। जबतक मालिक जिये, तुन्हें अपना भाई समझते रहे। मुझे विश्वास है कि तुम उसी तरह इस भारको सँभाले रहोगे।

सत्यनारायणने रोते हुए जवाब दिया—भाभी! भैया क्या उठ गये, मेरे भाग्य फूट गये। नहीं तो मुझे आदमी बना देते। मै उन्हींका नमक खाकर जिया हूँ और उन्हींकी चाकरीमें मरूंगा आप धीरज रखें। किसी प्रकारकी चिन्ता न करें। मैं जीतेजी आपकी सेवासे मुँह न मोड़ूँगा। आप केवल इतना कीजियेगा कि मैं जिस किसीकी शिकायत करूँ उसे डाँट दीजियेगा, नहीं तो ये लोग सिर चढ़ जायँगे।

[२]

इस घटनाके बाद कई वर्षोंतक मुन्शीजीने रियासतको सँभाला। वह अपने काममें बड़े कुशल थे। कभी एक कौड़ीका बल नहीं पड़ा। सारे जिलेमें उनका सम्मान होने लगा। लोग पण्डितजीको भूल-सा गये। दरबारों और कमेटियोंमें वे सम्मिलित होते, जिलेके अधिकारी उन्हींको जमींदार समझते। अन्य रईसोंमें भी उनका बड़ा आदर था, पर मानवृद्धि महँगी वस्तु है और भानुकुँवरि, अन्य स्त्रियोंके सदृश, पैसेको खूब पकड़ती

थी। वह मनुष्यकी मनोवृत्तियोंसे परिचित न थी। पण्डितजी हमेशा लालाजीको इनाम इकरार देते रहते थे। वे जानते थे कि ज्ञानके बाद ईमानका दूसरा स्तम्भ अपनी सुदशा है। इसके सिवाय वे खुद कभी कभी कागजोंकी जाँच कर लिया करते थे। नाममात्र हीको सही, पर इस निगरानीका डर जरूर बना रहता था। क्योंकि ईमानका सबसे बड़ा शत्रु अवसर है। भानुकुंवरि इन बातोंको जानती न थी। अतएव अवसर तथा धनाभाव जैसे प्रबल शत्रुओंके पंजेमें पड़कर मुन्शीजीका ईमान कैसे बेदाग बचता!

कानपुर शहरसे मिला हुआ, ठीक गंगाके किनारे एक बहुत आबाद और उपजाऊ गाँव था। पण्डितजी इस गाँवको लेकर नदीके किनारे पक्का घाट, मन्दिर, बाग, मकान आदि बनवाना चाहते थे। पर उनकी यह कामना सफल न हो सकी। संयोगसे अब यह गाँव बिकने लगा। उसके जमींदार एक ठाकुर साहब थे। किसी फौजदारीके मामलेमें फँसे हुए थे। मुकदमा लड़नेके लिये रुपयेकी चाह थी। मुन्शीजीने कचहरीमें यह समाचार सुना। चटपट मोलतोल हुआ। दोनों तरफ गरज थी। सौदा पटनेमें देर न लगी। बैनामा लिखा गया। रजिस्टरी हुई। रुपये मौजूद न थे; पर शहरमें साख थी। एक महाजनके यहाँसे ३० हजार रुपये मंगवाये और ठाकुर साहबकी नजर किये गये। हाँ, कामकाजकी आसानीके ख्यालसे यह सब लिखा-पढ़ी मुंशीजीने अपने ही नाम की, क्योंकि मालिकके लड़के अभी नाबालिग थे। उनके नामसे लेनेसे बहुत झंझट होती और विलम्ब होनेसे शिकार हाथसे निकल जाता। मुंशीजी बैनामा लिये असीम आनन्दमें

मग्न भानुकुंवरिके पास आये। परदा कराया और यह शुभ समाचार सुनाया। भानुकुंवरिने सजल नेत्रोंसे उनको धन्यवाद दिया। पण्डितजीके नामपर मन्दिर और घाट बनवानेका इरादा पक्का हो गया।

मुंशीजी दूसरे ही दिन उस गाँवमें गये। आसानी नजराने लेकर नये स्वामीके स्वागतको हाजिर हुए। शहरके रईसोंकी दावत हुई। लोगोंने नावोंपर बैठकर गगाकी खूब सैर की। मन्दिर आदि बनवानेके लिये आबादीसे हटकर एक रमणीक स्थान चुना गया।

[३]

यद्यपि इस गाँवको अपने नामसे लेते समय मुंशीजीके मनमें कपटका भाव न था। तथापि दो चार दिनमें ही उसका अंकुर जम गया और धीरे-धीरे बढ़ने लगा। मुंशीजी इस गाँवकी आय व्ययका हिसाब अलग रखते और अपनी स्वामिनीको उसका व्यौरा समझानेकी जरूरत न समझते। भानुकुँवरि भी इन बातों में दखल देना उचित न समझती थी, पर दूसरे कारिन्दोंसे ये सब बातें सुन-सुनकर उसे शंका होती थी कि कहीं मुन्शीजी दगा तो न देंगे। वह अपने मनका यह भाव मुंशीजोसे छिपाती थी, इस ख्यालसे कि कहीं कारिन्दोंने उन्हें हानि पहुँचानेके लिये यह षड्यन्त्र न रचा हो।

इस तरह कई साल गुजर गये। अब उस कपटके अंकुरने वृक्षका रूप धारण किया। भानुकुंवरिको मुंशीजीके उस भावके लक्षण दिखायी देने लगे। इधर मुंशीजीके मनमें भी कानूनने

नीतिपर विजय पायी, उन्होंने अपने मनमें फैसला किया कि गाँव मेरा है। हाँ, मैं भानुकुँवरिका ३० हजारका ऋणी अवश्य हूँ। वे बहुत करेंगी अपने रुपये ले लेंगी और क्या कर सकती हैं? मगर दोनों तरफ यह आग अन्दर-ही अन्दर सुलगती रही। मुन्शीजी शस्त्रसज्जित होकर आक्रमणके इन्तजारमें थे और भानु-कुँवरि इसके लिये अच्छा अवसर ढूँढ़ रही थी। एक दिन साहस करके उसने मुन्शीजीको अन्दर बुलाया और कहा—लालाजी 'बरगदा' में मन्दिरका काम कब लगवाइयेगा? उसे लिये आठ साल हो गये, अब काम लग जाय तो अच्छा हो। जिन्दगीका कौन ठिकाना, जो काम करना है उसे कर ही डालना चाहिये।

इस ढङ्गसे इस विषयको उठाकर भानुकुँवरिने अपनी चतु-राईका अच्छा परिचय दिया। मुन्शीजी भी दिलमें इसके कायल हो गये। जरा सोचकर बोले—इरादा तो मेरा कई बार हुआ, पर मौकेकी जमीन नहीं मिलती। गंगातटकी सब जमीन असामियोंके जोतमें है और वह किसी तरह छोड़नेपर राजी नहीं।

भानुकुँवरि—यह बात तो आज मुझे मालूम हुई। आठ साल हुए इस गाँवके विषयमें आपने कभी भूलकर भी तो चर्चा नहीं की। मालूम नहीं, कितनी तहसील है, क्या मुनाफा है, कैसा गाँव है, कुछ सीर होती है या नहीं। जो कुछ करते हैं आप ही करते हैं और करेंगे। पर मुझे भी तो मालूम होना चाहिये।

मुन्शीजी सँभल बैठे। उन्हें मालूम हो गया कि इस चतुर स्त्रीसे बाजी ले जाना मुश्किल है। गाँव लेना ही है तो अब क्या डर। खुलकर बोले—आपको इससे सरोकार न था। इसलिये मैंने व्यर्थ कष्ट देना मुनासिब न समझा।

भानुकुँवरिके हृदयमें कुठार-सा लगा। परदेसे निकल आय और मुन्शीजीकी तरफ तेज आँखोंसे देखकर बोली—आप क्या कहते हैं! आपने गाँव मेरे लिये लिया था या अपने लिये? रुपये मैंने दिये या आपने? उसपर जो खर्च पड़ा वह मेरा या आपका? मेरी समझमें नहीं आता कि आप कैसी बातें करते हैं?

मुन्शीजीने सावधानीसे जबाब दिया—यह तो आप जानती ही हैं कि गाँव मेरे नामसे क्रय हुआ है। रुपया जरूर आपका लगा, पर उनका मैं देनदार हूँ। रहा तहसील-वसूलका खर्च, यह सब मैंने हमेशा अपने पाससे किया है। उसका हिसाब-किताब, आय-व्यय, सब अलग रखता आया हूँ।

भानुकुँवरिने क्रोधसे काँपते हुए कहा—इस कपटका फल आपको अवश्य मिलेगा। आप इस निर्दयतासे मेरे बच्चोंका गला नहीं काट सकते। मुझे नहीं मालूम था कि आपने हृदयमें यह छुरी छिपा रखी है, नहीं तो यह नौबत ही क्यों आती। खैर, अबसे मेरी रोकड़ और बही खाता आप कुछ न छुए। मेरा जो कुछ होगा ले लूँगी। जाइये, एकान्तमें बैठकर सोचिये। पापसे किसीका भला नहीं होता। तुम समझते होगे कि ये बालक अनाथ हैं; इनकी सम्पत्ति हजम कर लूँगा। इस भूलमें न रहना। मैं तुम्हारे घरकी ईंट तक बिकवा लूँगी!

यह कहकर भानुकुँवरि फिर परदेकी आड़में आ बैठी और रोने लगी। स्त्रियाँ क्रोधके बाद किसी-न-किसी बहाने रोया करती हैं। लाला साहबको कोई जवाब न सूझा। वहांसे उठ आये और दफ्तरमें जाकर कुछ कागज उलट-पलट करने लगे। पर भानु-कुँवरि भी उनके पीछे-पीछे दफ्तरमें पहुँची और डाँटकर बोली—

मेरा कोई कागज मत छूना, नहीं तो बुरा होगा ; तुम विषैले साँप हो ! मैं तुम्हारा मुँह नहीं देखना चाहती ।

मुन्शीजी कागजमें कुछ काट-छाँट करना चाहते थे ; पर विवश हो गये । खजानेकी कुंजी निकालकर फेंक दी ; बही खाते पटक दिये, किवाड़ धड़ाकेसे बन्द किये और हवाकी तरह सन्नसे निकल गये । कपटमें हाथ तो डाला, पर कपट-मन्त्र न जाना ।

दूसरे कारिन्दोंने यह कैफियत सुनी तो फूले न समाये । मुन्शी-जीके सामने उनकी दाल न गलने पाती थी । भानुकुँवरिके पास आकर वे आगपर तेल छिड़कने लगे । सब लोग इस विषयमें सहमत थे कि मुंशी सत्यनारायणने विश्वासघात किया है । मालिक-का नमक उनकी हड्डियोंसे फूट-फूटकर निकलेगा ।

दोनों ओरसे मुकद्दमेबाजीकी तैयारियाँ होने लगीं । एक तरफ न्यायका शरीर था ; दूसरी ओर न्यायकी आत्मा । प्रकृतिको पुरुष-से लड़नेका साहस हुआ था ।

भानुकुँवरिने लाला छक्कनलालसे पूछा—हमारा वकील कौन है ?

छक्कनलालने इधर-उधर झाँककर कहा—वकील तो सेठजी हैं ; पर सत्यनारायणने उन्हें पहलेसे ही गाँठ रखा होगा । इस मुकद्दमेके लिए बड़े होशियार वकीलकी जरूरत है । मेहरा बाबूकी आजकल खूब चल रही है । हाकिमोंकी कलम पकड़ लेते हैं । बोलते हैं तो जैसे मोटरकार छूट गयी । सरकार, और क्या कहें कई अदमियोंको फाँसीसे उतार लिया है । उनके सामने कोई वकील जबान तो खोल ही नहीं सकता । सरकार कहें तो वही कर लिये जायँ ।

छक्कनलालकी अत्युक्तिने सन्देह पैदा कर दिया। भानुकुँवरिने कहा—नहीं, पहले सेठजीसे पूछ लिया जाय। इसके बाद देखा जायगा। आप जाइये, उन्हें बुला लाइये।

छक्कनलाल अपनी तकदीरको ठोकते हुए सेठजीके पास गये। सेठजी पण्डित भृगुदत्तके जीवन-काल हीसे उनके कानून-सम्बन्धी सब काम किया करते थे, मुकद्दमेका हाल सुना तो सन्नाटेमें आ गये। सत्यनारायणको वह बड़ा नेकनीयत आदमी समझते थे। उनके पतनपर बड़ा खेद किया। उसी वक्त आये। भानुकुँवरिने रो-रोकर उनसे अपनी विपत्तिकी कथा कही और अपने दोनों लड़कोंको उनके सामने खड़ा करके बोली—आप इन अनाथोंकी रक्षा कीजिये। इन्हें मैं आपको सौंपती हूँ।

सेठजीने समझौतेकी बात छेड़ी। बोले—आपसकी लड़ाई अच्छी नहीं।

भानुकुँवरि—अन्यायीके साथ लड़ना अच्छा है।

सेठजी—पर हमारा पक्ष तो निर्बल है।

भानुकुँवरि फिर परदेसे निकल आयी और विस्मित होकर बोली—क्या हमारा पक्ष निर्बल है? दुनिया जानती है कि गाँव हमारा है। उसे हमसे कौन ले सकता है? नहीं, मैं सुलह कभी न करूँगी। आप कागजोंको देखें। मेरे बच्चोंकी खातिर यह कष्ट उठावें। आपका परिश्रम निष्फल न जायगा। सत्यनारायणकी नीयत पहले खराब न थी। देखिये, जिस मितीमें गाँव लिया गया है उस मितीमें ३० हजारका क्या खर्च दिखाया गया है! अगर उसने अपने नाम उधार लिखा हो तो देखिये, वार्षिक सूद चुकाया गया या नहीं। ऐसे नर-पिशाचसे मैं कभी सुलह न करूँगी।

सेठजीने समझ लिया कि इस समय समझाने बुझानेसे कुछ काम न चलेगा। कागजात देखे, अभियोग चलानेकी तैयारियाँ होने लगीं।

[४]

मुंशी सत्यनारायणलाल खिसियाये हुए मकान पहुँचे। लड़केने मिठाई माँगी। उसे पीटा। स्त्रीपर इसलिये बरस पड़े कि उसने क्यों लड़केको उनके पास जाने दिया। अपनी वृद्धा माताको डाँटकर कहा—तुमसे इतना भी नहीं हो सकता कि जरा लड़केको बहलाओ। एक तो मैं दिनभरका थका मांदा घर आऊँ और फिर लड़केको खेलाऊँ? मुझे दुनियामें न और कोई काम है न धन्धा।

इस तरह घरमें बावैला मचाकर वह बाहर आये और सोचने लगे—मुझसे बड़ी भूल हुई! मैं कैसा मूर्ख हूँ! इतने दिनतक सारे कागज-पत्र अपने हाथमें थे। जो चाहता कर सकता था। पर हाथपर हाथ धरे बैठा रहा। आज सिरपर आ पड़ी तो सूझी। मैं चाहता तो बहीखाते सब नये बना सकता था, जिसमें इस गाँव का और इस रुपयेका जिक्र ही न होता। पर मेरी मूर्खताके कारण घरमें आई हुई लक्ष्मी रूठी जाती है। मुझे क्या मालूम था कि वह चुड़ैल मुझसे इस तरह पेश आवेगी और कागजोंमें हाथतक न लगाने देगी।

इसी उधेड़-बुनमें मुंन्शीजी यकायक उछल पड़े। एक उपाय सूझ गया—क्यों न कार्यकर्त्ताओंको मिला लूँ? यद्यपि मेरी सख्तीके कारण वे सब मझसे नाराज थे और इस समय सीधे

बात न करेंगे, तथापि उनमें ऐसा कोई भी नहीं जो प्रलोभनसे मुट्ठीमें न आ जाय। हाँ, इसमें रुपया पानीकी तरह बहाना पड़ेगा। पर इतना रुपया आवे कहाँसे? हाय दुर्भाग्य! दो चार दिन ही पहले चेत गया होता तो कोई कठिनाई न पड़ती। क्या जानता था कि वह डाइन इस तरह वज्रप्रहार करेगी। बस, अब एक ही उपाय है। किसी तरह वे काग़ज़ात गुम कर दूँ। बड़ी जोखिमका काम है पर करना ही पड़ेगा।

दुष्कामनाओंके सामने एक बार सिर झुकानेपर फिर संभलना कठिन हो जाता है। पापके अथाह दलदलमें जहाँ एक बार पड़े कि फिर प्रति-क्षण नीचे ही चले जाते हैं। मुन्शी सत्यनारायण सा विचारशील मनुष्य इस समय इस फिक्रमें था कि कैसे सेंद लगा पाऊँ! मुन्शीजीने सोचा—क्या सेंद लगाना आसान है! इसके वास्ते कितनी चतुरता, कितना साहस, कितनी बुद्धि, कितनी वीरता चाहिए। कौन कहता है कि चोरी करना आसान काम है? मैं जो कहीं पकड़ा गया तो डूबमरनेके सिवा और कोई मार्ग ही न रहेगा!

बहुत सोचने विचारनेपर भी मुन्शीजीको अपने ऊपर ऐसा दुस्साहस कर सकनेका विश्वास न हो सका। हाँ, इससे सुगम एक दूसरी तदबीर नजर आयी—क्यों न दफ्तरमें आग लगा दूँ? एक बोतल मिट्टीके तेल और एक दियासलाईकी जरूरत है। किसी बदमाशको मिला लूँ। मगर यह क्या मालूम कि वह बही कमरेमें रखी है या नहीं! चुड़ैलने उसे जरूर अपने पास रख ली होगी। नहीं, आग लगाना गुनाह बे-लज्जत होगा।

बहुत देरतक मुंशीजी करवटें बदलते रहे। नये-नये मनसूबे सोचते, पर फिर अपने ही तर्कोंसे उन्हें काट देते। जैसे वर्षाकाल-

में बादलोंकी नयी-नयी सूरतें बनतीं और फिर हवाके वेगसे बिगड़ जाती हैं वही दशा उस समय उनके मनसूबोंकी हो रही थी।

पर इन मानसिक अशान्तिमें भी एक विचार पूर्णरूपसे स्थिर था—किसी तरह इन कागजातको अपने हाथमें लाना चाहिए। काम कठिन है—माना; पर हिम्मत न थी तो रार क्यों मोल ली? क्या ३० हजारकी जायदाद दाल-भातका कौर है!—चाहे जिस तरह हो, चोर बने बिना काम नहीं चल सकता। आखिर जो लोग चोरियाँ करते हैं वे भी तो मनुष्य ही होते हैं। बस एक छलाँगका काम है। अगर पार हो गये तो राज करेंगे, गिर पड़े तो जानसे हाथ धोयेंगे।

[५]

रातके दस बज गये थे। मुंशी सत्यनारायण कुञ्जियोंका एक गुच्छा कमरमें दबाये घरसे बाहर निकले। द्वारपर थोड़ा सा पुआल रखा हुआ था। उसे देखते ही वे चौंक पड़े। मारे डरके छाती धड़कने लगी। जान पड़ा कि कोई छिपा बैठा है। कदम रुक गये। पुआलकी तरफ ध्यानसे देखा। उसमें बिलकुल हरकत न हुई। तब हिम्मत बाँधी। आगे बढ़े और मनको समझाने लगे—मैं कैसा बौखल हूँ। अपने द्वार पर किसका डर? और सड़क पर भी मुझे किसका डर है! मैं अपनी राह जाता हूँ। कोई मेरी तरफ तिरछी आँखसे नहीं देख सकता। हाँ जब मुझे सेंद लगाते देख ले—वहीं पकड़ ले—तब अलबत्ते डरनेकी बात है! तिसपर भी बचावकी युक्ति निकल सकती है।

अकस्मात् उन्होंने भानुकुँवरिके एक चपरासीको आते हुए

देखा। कलेजा धड़क उठा। लपककर एक अन्धेरी गलीमें घुस गये। बड़ी देरतक वहाँ खड़े रहे। जब वह सिपाही आँखोंसे ओझल हो गया तब फिर सड़कपर आये। वह सिपाही आज सुबहतक इनका गुलाम था, उसे इन्होंने कितनी बार गालियाँ दी थीं, लातें भी मारी थीं। पर अभी उसे देखकर उनके प्राण सूख गये।

उन्होंने फिर तर्ककी शरण ली। मैं मानों भंग खाकर आया हूँ। इस चपरासीसे इतना डरा, मानो कि वह मुझे देख लेता, पर मेरा कर क्या सकता था। हजारों आदमी रास्ता चल रहे हैं। उन्हींमें एक मैं भी हूँ। क्या वह अन्तर्यामी है? सबके हृदय का हाल जानता है? मुझे देखकर वह अदबसे सलाम करता और वहाँका कुछ हाल भी कहता, पर मैं उससे ऐसा डरा कि सूरत तक न दिखायी। इस तरह मनको समझाकर वे आगे बढ़े। सच है, पापके पंजोंमें फँसा हुआ मन पतझड़का पत्ता है, जो हवाके जरा-से झोंकेसे गिर पड़ता है।

मुन्शीजी बाजार पहुँचे। अधिकतर दूकानें बन्द हो चुकी थीं। उनमें साँढ़ और गायें बैठी हुई जुगाली कर रही थीं। केवल हलवाइयोंकी दूकानें खुली थीं और कहीं कहीं गजरेवाले हारकी हाँक लगाते फिरते थे। सब हलवाई मुन्शीजीको पहचानते थे। अतएव, मुन्शीजीने सिर झुका लिया। कुछ चाल बदली और लपकते हुए चले। यकायक उन्हें एक बग्घी आती दिखायी दी। यह सेठ बल्लभदास वकीलकी बग्घी थी। इसमें बैठकर हजारों बार सेठजीके साथ कचहरी गये थे, पर आज यह बग्घी काल-देवके समान भयंकर मालूम हुई। फौरन एक खाली दूकानपर

चढ़ गये। वहाँ विश्राम करनेवाले साँढ़ने समझा ये मुझे पदच्युत करने आये हैं। माथा झुकाये, फुँकारता हुआ उठ बैठा, पर इसी बीचमें बग्घी निकल गयी और मुन्शीजीकी जान-में-जान आयी। अबकी उन्होंने तर्कका आश्रय न लिया। समझ गये कि इस समय इससे कोई लाभ नहीं। खैरियत यह हुई कि वकीलने देखा नहीं। वह एक ही घाघ है। मेरे चेहरेसे ताड़ जाता।

कुछ विद्वानोंका कथन है कि मनुष्यकी स्वाभाविक प्रवृत्ति पापकी ओर होती है, पर यह कोरा अनुमान ही अनुमान है; बात अनुभव सिद्ध नहीं। सच बात यह है कि मनुष्य स्वभावतः पाप-भीरु होता है और हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि पापसे उसे कैसी घृणा होती है।

एक फरलाँग आगे चलकर मुन्शीजीको एक गली मिली। यही भानुकुँवरिके घरका रास्ता था। एक धुँधली सी लालटेन जल रही थी। जैसा मुंशीजीने अनुमान किया था, पहरेदारका पता न था। अस्तबलमें चमारोंके कहाँ नाच हो रहा था। कई चमारिनें बनाव-सिंगार करके नाच रहीं थीं। चमार मृदङ्ग बजा बजा कर गाते थे—

"नाहीं घरे श्याम, घेरी आये बदरा
सोवत रहेउँ सपन एक देखेउँ रामा
खुलि गई नींद ढरक गये कजरा
नाहीं घरे श्याम, घेरी आये बदरा"

दोनों पहरेदार वहीं तमाशा देख रहे थे। मुन्शीजी दबे पाँव

लालटेनके पास गये और जिस तरह बिल्ली चूहेपर झपटती है उसी तरह उन्होंने झपटकर लालटेनको बुझा दिया। एक पड़ाव पूरा हो गया; पर वे उस कार्यको जितना दुष्कर समझते थे उतना न जान पड़ा। हृदय कुछ मज़बूत हुआ। दफ्तरके बरामदेमें पहुँचे और खूब कान लगाकर आहट ली। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। केवल चमारोंका कोलाहल सुनाई देता था। इस समय मुन्शीजीके दिलमें धड़का न था, पर सिर धम-धम कर रहा था; हाथ-पाँव काँप रहे थे, साँस बड़े वेगसे चल रही थी; शरीरका एक-एक रोम आँख और कान बना हुआ था। वे सजीवताकी मूर्त्ति हो रहे थे। उनमें जितना पौरुष, जितनी चपलता, जितना साहस, जितनी चेतनता, जितनी बुद्धि; जितना औसान था, वे सब इस वक्त सजग और सचेत होकर इच्छा शक्तिकी सहायता कर रहे थे।

दफ्तरके दरवाजेपर वही पुराना ताला लगा हुआ था। इसकी कुंजी आज बहुत तलाश करके वे बाजारसे लाये थे। ताला खुल गया, किवाड़ोंने बहुत दबी जबानसे प्रतिरोध किया, पर इसपर किसीने ध्यान न दिया। मुन्शीजी दफ्तरमें दाखिल हुए। भीतर चिराग जल रहा था। मुन्शीजीको देखकर उसने एक दफे सिर हिलाया। मानों उन्हें भीतर आनेसे रोका।

मुंशीजीके पैर थर-थर काँप रहे थे। एड़ियाँ जमीनसे उछली पड़ती थीं। पापका बोझ उन्हें असह्य था।

पलभरमें मुन्शीजीने बहियोंको उलटा पलटा, लिखावट उनकी आँखोंमें तैर रही थी। इतना अवकाश कहाँ था कि जरूरी कागजात छाँट लेते। उन्होंने सारी बहियोंको समेटकर एक बड़ा

गट्ठर बनाया और सिरपर रखकर तीरके समान कमरेसे बाहर निकल आये। उस पापकी गठरीको लादे हुए वह अन्धेरी गलीमें गायब हो गये।

तंग, अन्धेरी, दुर्गन्धिपूर्ण, कीचड़से भरी हुई गलियोंमें वे नंगे पाँव, स्वार्थ, लोभ और कपटका वह बोझ लिये चले जाते थे। मानो पापमय आत्मा नरककी नालियोंमें बही जाती थी।

बहुत दूर तक भटकनेके बाद वे गंगाके किनारे पहुँचे। जिस तरह कलुषित हृदयोंमें कहीं कहीं धर्मका धुँधला प्रकाश रहता है उसी तरह नदी की सतह पर तारे झिलमिला रहे थे। तटपर कई साधु धूनी रमाये पड़े थे। ज्ञानकी ज्वाला मनकी जगह बाहर दहक रही थी। मुंशीजीने अपना गट्ठर उतारा और चादरसे खूब मजबूत बाँधकर बलपूर्वक नदीमें फेंक दिया। सोती हुई लहरोंमें कुछ हलचल हुई और फिर सन्नाटा हो गया।

[६]

मुन्शी सत्यनारायणके घरमें दो स्त्रियाँ थीं—माता और पत्नी। वे दोनों अशिक्षिता थीं। तिसपर भी मुन्शीजीको गङ्गामें डूब मरने या कहीं भाग जानेकी जरूरत न होती थी। न वे बॉडी पहनती थीं, न मोजे-जूते, न हारमोनियमपर गा सकती थीं। यहाँतक कि उन्हें साबुन लगाना भी न आता था। हेयर पिन, ब्रूचेज और जाकेट आदि परमावश्यक चीजोंका तो उन्होंने नाम भी नहीं सुना था। बहूमें आत्म-सम्मान जरा भी नहीं था; न सासमें आत्म गौरवका जोश। बहू अबतक सासकी घुड़कियाँ भीगी बिल्लीकी तरह सह लेती थी—हाँ मूर्खे! सासको बच्चेके नहलाने-धुलाने,

यहाँतक कि घरमें झाड़ू देनेसे भी घृणा न थी, हा ज्ञानान्धे ! बहू स्त्री क्या थी, मिट्टीका लोन्दा थी। एक पैसेकी भी जरूरत होती तो साससे मागती। सारांश यह कि दोनों जनी अपने अधिकारोंसे बेखबर, अन्धकारमें पड़ी हुई पशुवत् जीवन व्यतीत करती थीं। ऐसी फूहड़ थीं कि रोटियाँ भी अपने हाथसे बना लेती थीं। कंजूसीके मारे दालमोठ, समोसे कभी बाजारसे न मँगातीं आगरेवालेकी दूकानकी चीजें खाई होतीं तो उनका मजा जानतीं। बुढ़िया खूसट दवा-दरपन भी जानती थी। बैठी-बैठी घासपात कूटा करती।

मुन्शीजीने माँके पास जाकर कहा--अम्मा ! अब क्या होगा ? भानुकुँवरिने मुझे जवाब दे दिया।

माताने घबराकर पूछा—जवाब दे दिया ?

मुन्शीजी—हाँ, बिल्कुल बेकसूर !

माता—क्या बात हुई ! भानुकुँवरिका मिजाज तो ऐसा न था।

मुन्शीजी—बात कुछ न थी। मैंने अपने नामसे जो गाँव लिया था उसे मैंने अपने अधिकारमें कर लिया। कल मुझसे और उनसे साफ-साफ बातें हुईं, मैंने कह दिया कि यह गाँव मेरा है। मैंने अपने नामसे लिया है। उसमें तुम्हारा कोई इजारा नहीं। बस, बिगड़ गईं, जो मुँहमें आया बकती रहीं। उसी वक्त मुझे निकाल दिया और धमका कर कहा, मैं तुमसे लड़कर अपना गाँव ले लूँगी। अब आज ही उनकी तरफसे मेरे ऊपर मुकद्दमा दायर होगा। मगर इससे होता क्या है। गाँव मेरा है। उसपर मेरा कब्जा है। एक नहीं हजार मुकद्दमे चलावें डिगरी मेरी होगी।

माताने बहूकी तरफ मर्मान्तक दृष्टिसे देखा और बोली—

क्यों भैया ! वह गाँव लिया तो था तुमने उन्हींके रुपयेसे और उन्हींके वास्ते ?

मुन्शीजी—लिया था तब लिया था। अब मुझसे ऐसा आबाद और मालदार गाँव नहीं छोड़ा जाता। वह मेरा कुछ नहीं कर सकती। मुझसे अपना रुपया भी नहीं ले सकती। डेढ़ सौ गाँव तो हैं। तब भी हवस नहीं मानती।

माता—बेटा, किसीके धन ज्यादा होता है तो वह उसे फेंक थोड़े ही देता है। तुमने अपनी नीयत बिगाड़ी, यह अच्छा काम नहीं किया। दुनिया तुम्हें क्या कहेगी! और दुनिया चाहे कहे या न कहे, तुमको भला ऐसा चाहिए कि जिसकी गोदमें इतने दिन पले, जिसका इतने दिनोंतक नमक खाया, अब उसीसे दगा करो! नारायणने तुम्हें क्या नहीं दिया ? मजेसे खाते हो पहनते हो, घरमें नारायणका दिया चार पैसा है, बाल बच्चे हैं। और क्या चाहिए ? मेरा कहना मानो, इस कलंकका टीका अपने माथे न लगाओ। यह अजस मत लो। बरकत अपनी कमाईमें होती है, हरामकी कौड़ी कभी नहीं फलती।

मुंशीजी—ऊँह ! ऐसी बातें बहुत सुन चुका हूँ। दुनिया उन पर चलने लगे तो सारे काम बन्द हो जायँ! मैंने इतने दिनोंतक इनकी सेवा की। मेरी ही बदौलत ऐसे-ऐसे चार पाँच गाँव बढ़ गये। जबतक पण्डितजी थे, मेरी नीयतका मान था। मुझे आँखमें धूल डालनेकी जरूरत न थी, वे आप ही मेरी खातिर कर दिया करते थे। उन्हें मरे आठ साल हो गये मगर मुसम्मातके एक बीड़े पानकी भी कसम खाता हूँ, मेरी जातसे उनकी हजारों रुपये मासिककी बचत होती थी। क्या उनको इतनी समझ भी न थी कि

वह बेचारा जो इतना ईमानदारीसे मेरा काम करता है, इस नफे-में कुछ उसे भी मिलना चाहिए ? हक कहकर न दो, इनाम कहकर दो; किसी तरह तो दो। मगर वे तो समझती थीं कि मैंने इसे बीस रुपये महीनेपर मोल ले लिया है। मैंने आठ सालतक सब्र किया, अब क्या इसी बीस रुपयेमें गुलामी करता रहूँ और अपने बच्चोंको दूसरोंका मुँह ताकनेके लिये छोड़ जाऊँ ? अब मुझे यह अवसर मिला है। इसे क्यों छोड़ूं ? जमींदारीकी लालसा लिये हुए क्यों मरूँ ? जबतक जीऊँगा खुद खाऊँगा, मेरे पीछे मेरे बच्चे चैन उड़ायेंगे।

माताकी आँखोंमें आँसू भर आये। बोली—बेटा, मैंने तुम्हारे मुँहसे ऐसी बातें कभी न सुनी थीं। तुम्हारे क्या हो गया है ? तुम्हारे आगे बाल-बच्चे हैं। आगमें हाथ न डालो !

बहूने सासकी ओर देखकर कहा—हमको ऐसा धन न चाहिए, हम अपनी दाल-रोटी हीमें मगन हैं।

मुन्शीजी—अच्छी बात है, तुम लोग रोटी दाल खाना, गजी गाढ़ा पहनना, मुझे अब हलुवे-पूरीकी इच्छा है।

माता—यह अधर्म मुझसे न देखा जायगा। मैं गंगामें डूब मरूँगी।

पत्नी—तुम्हें ये सब कांटे बोना है तो मुझे मायके पहुँचा दो। मैं अपने बच्चोंको लेकर इस घरमें न रहूँगी।

मुंशीजीने झुंझलाकर कहा—तुम लोगोंकी बुद्धि तो भाँग खा गयी है। लाखों सरकारी नौकर रात-दिन दूसरोंका गला दबा दबाकर रिश्वतें लेते हैं और चैन करते हैं। न उनके बाल-बच्चों ही कुछको होता है न उन्हींको हैजा पकड़ता है। अधर्म उनको

क्यों नहीं खा जाता जो मुझीको खा जायगा ! मैंने तो सत्य-वादियोंको सदा दुःख झेलते ही देखा है। मैंने जो कुछ किया है उसका सुख लूटूँगा ! तुम्हारे मनमें जो आवे करो।

प्रातःकाल दफ्तर खुला तो कागजात सब गायब थे। मुंशी छक्कनलाल बौखलायेसे घरमें गये और मालकिनसे पूछा—"क्या कागजात आपने उठवा लिये हैं ?" भानुकुँवरिने कहा—"मुझे क्या खबर जहाँ आपने रखे होंगे वहीं होंगे।" फिर तो सारे घरमें खलबली पड़ गयी। पहरेदारोंपर मार पड़ने लगी। भानुकुँवरिको तुरन्त मुंशी सत्यनारायणपर सन्देह हुआ। मगर उनकी समझमें छक्कनलालकी सहायताके बिना यह काम होना असम्भव था। पुलिसमें रपट हुई। एक ओझा नाम निकालनेके लिये बुलाया गया। मौलवी साहबने कुर्रा फेंका। ओझाने बताया, यह किसी पुराने बैरीका काम है। मौलवी साहबने फर्माया, किसीके घर भेदियेने यह हरकत की है। शामतक यही दौड़-धूप रही। फिर यह सलाह होने लगी कि इन कागजातके बगैर मुकद्दमा कैसे चलेगा। पक्ष तो पहले ही निर्बल था। जो कुछ बल था वह इसी बही खातेका था। अब तो वे सबूत भी हाथसे गये। दावेमें कुछ जान ही न रही। मगर भानुकुँवरिने कहा—"बलासे हार जायँगे। हमारी चीज कोई छीन ले तो हमारा धर्म है कि उससे यथाशक्ति लड़ें। हारकर बैठ रहना कायरोंका काम है।" सेठजी (वकील) को इस दुर्घटनाका समाचार मिला तो उन्होंने भी यही कहा कि अब दावेमें जरा भी जान नहीं है। केवल अनुमान और तर्कका भरोसा है। अदालतने माना तो माना, नहीं तो हार माननी पड़ेगी। पर भानुकुँवरिने एक न मानी। लखनऊ और

इलाहाबादसे दो होशियार बैरिस्टर बुलवाये। मुकद्दमा शुरू हो गया।

सारे शहरमें इस मुकद्दमेकी धूम थी। कितने ही रईसोंको भानुकुँवरिने साक्षी बनाया था। मुकद्दमा शुरू होनेके समय हजारों आदमियोंकी भीड़ हो जाती थी। लोगोंके इस खिंचावका मुख्य कारण यह था कि भानुकुँवरि एक परदेकी आड़में बैठी हुई अदालतकी कार्रवाई देखा करती थी। क्योंकि उसे अब अपने नौकरोंपर जरा भी विश्वास न था।

वादीके बैरिस्टरने एक बड़ी मार्मिक वक्तृता दी। उसने सत्यनारायणकी पूर्वावस्थाका खूब अच्छा चित्र खींचा। उसने दिखलाया कि वे कैसे स्वामिभक्त, कैसे कार्य-कुशल, कैसे धर्मशील थे और स्वर्गवासी पण्डित भृगुदत्तका उनपर पूर्ण विश्वास हो जाना किस तरह स्वाभाविक था। इसके बाद उसने सिद्ध किया कि मुन्शी सत्यनारायणकी आर्थिक अवस्था कभी ऐसी न थी कि वे इतना धन संचय कर सकते। अन्तमें उसने मुन्शीजीकी स्वार्थपरता, कूटनीति, निर्दयता और विश्वासघातकताका ऐसा घृणोत्पादक चित्र खींचा कि लोग मुंशीजीको गालियाँ देने लगे! इसके साथ ही उन्होंने पण्डितजीके अनाथ बालकोंकी दशाका बड़ा ही करुणोत्पादक वर्णन किया, कैसे शोक और लज्जाकी बात है कि ऐसा चरित्रवान, ऐसा नीतिकुशल मनुष्य इतना गिर जाय कि अपने ही स्वामीके अनाथ बालकोंकी गर्दनपर छुरी चलानेमें संकोच न करे। मानव-पतनका ऐसा करुण, ऐसा हृदय-विदारक उदाहरण मिलना कठिन है। इस कुटिल कार्यके परिणाम-की दृष्टिसे इस मनुष्यके पूर्व परिचित सद्गुणोंका गौरव लुप्त हो

जाता है। क्योंकि वह असली मोती नहीं, नक़ली काँचके दाने थे जो केवल विश्वास जमानेके निमित्त दरसाये गये थे। वह केवल एक सुन्दर जाल था जो एक सरल हृदय और छल-छन्दोंसे दूर रहनेवाले रईसको फँसानेके लिए फैलाया गया था। इस नरपशुका अन्तःकरण कितना अन्धकारमय, कितना कपट-पूर्ण, कितना कठोर है और इसकी दुष्टता कितनी घोर और कितनी अपावन है। अपने शत्रुके साथ दगा करना तो एक बार क्षम्य है मगर इस मलिनहृदय मनुष्यने उन बेकसोंके साथ दगा किया है जिनपर मानव-स्वभावके अनुसार दगा करना अनुचित है। यदि आज हमारे पास बही खाते मौजूद होते तो अदालतपर सत्यनारायणकी सत्यता स्पष्टरूपसे प्रकट हो जाती। पर मुंशीजीके बरखास्त होते ही दफ्तरसे उनका लुप्त हो जाना भी अदालतके लिये एक बड़ा सबूत है।

शहरके कई रईसोंने गवाही दी—पर सुनी सुनाई बातें जिरहमें उखड़ गयीं।

दूसरे दिन फिर मुकद्दमा पेश हुआ।

प्रतिवादीके वकीलने अपनी वक्तृता शुरू की। उसमें गम्भीर विचारोंकी अपेक्षा हास्यका आधिक्य था—यह एक विलक्षण न्याय सिद्धान्त है कि किसी धनाढ्य मनुष्यका नौकर जो कुछ खरीदे वह उसके स्वामीकी चीज समझी जाय। इस सिद्धान्तके अनुसार हमारी गवर्नमेंटको अपने कर्मचारियोंकी सारी संपत्तिपर कब्जा कर लेना चाहिये! यह स्वीकार करनेमें हमको कोई आपत्ति नहीं कि हम इतने रुपयोंका प्रबन्ध न कर सकते थे। और यह धन हमने स्वामी हीसे ऋण लिया। पर हमसे ऋण चुकानेका कोई

तकाजा न करके वह जायदाद ही माँगी जाती है। यदि हिसाबके कागजात दिखलाये जायँ तो वे साफ बता देंगे कि मैं सारा ऋण दे चुका। हमारे मित्रने कहा है कि ऐसी अवस्थामें बहियोंका गुम हो जाना अदालतके लिए एक सबूत होना चाहिये। मैं भी उनकी उक्तिका समर्थन करता हूँ। यदि मैं आपसे ऋण लेकर अपना विवाह करूँ तो क्या आप मुझसे मेरी नवविवाहिता वधूको छीन लेंगे?

हमारे सुयोग्य मित्रने हमारे ऊपर अनाथोंके साथ दगा करने का दोष लगाया है। अगर मुंशी सत्यनारायणकी नीयत खराब होती तो उनके लिये सबसे अच्छा अवसर वह था जब पण्डित भृगुदत्तका स्वर्गवास हुआ। इतने विलम्बकी क्या जरूरत थी? यदि आप शेरको फँसाकर उसके बच्चेको उसी वक्त नहीं पकड़ लेते, उसे बढ़ने और सबल होनेका अवसर देते हैं तो मैं आपको बुद्धिमान न कहूँगा। यथार्थ बात यह है कि मुंशी सत्यनारायणने नमकका जो कुछ हक था वह पूरा कर दिया। आठ वर्ष तक तन-मनसे स्वामी-संतानकी सेवा की। आज उन्हें अपनी साधुताका जो फल मिल रहा है वह बहुत ही दुःखजनक और हृदय-विदारक है। इसमें भानुकुँवरिका कोई दोष नहीं। वे एक गुण-सम्पन्न महिला हैं। मगर अपनी जातिके अवगुण उनमें भी विद्यमान हैं। ईमानदार मनुष्य स्वभावतः स्पष्टभाषी होता है, उसे अपनी बातोंमें नमक-मिर्च लगानेकी जरूरत नहीं होती। यही कारण है कि मुंशीजीके मृदुभाषी मातहतोंको उनपर आक्षेप करनेका मौका मिल गया। इस दावेकी जड़ केवल इतनी है और कुछ नहीं। भानुकुँवरि यहाँ उपस्थित हैं। क्या वे कह

सकती हैं कि इस आठ वर्षकी मुद्दतमें कभी इस गाँवका जिक्र उनके सामने आया ? कभी उसके हानि-लाभ, आय-व्यय, लेन-देनकी चर्चा उनसे की गयी ? मान लीजिये कि मैं गवर्नमेंटका मुलाजिम हूँ। यदि मैं आज दफ्तरमें आकर अपनी पत्नीके आय-व्यय और अपने टहलुओंके टैक्सोंका पचड़ा गाने लगूं तो शायद मुझे शीघ्र ही अपने पदसे पृथक् होना पड़े। और संभव है, कुछ दिनों बरेलीकी विशाल अतिथिशालामें रखा जाऊँ। जिस गाँवसे भानुकुँवरिको कोई सरोकार न था उसकी चर्चा उनसे क्यों की जाती ?

इसके बाद बहुतसे गवाह पेश हुए ; जिनमें अधिकांश आस-पासके देहातोंके जमींदार थे, उन्होंने बयान किया कि हमने मुंशी सत्यनारायणको असामियोंको अपनी दस्तखती रसीदें देते और अपने नामसे खजानेमें रुपया दाखिल करते देखा है।

इतनेमें सन्ध्या हो गयी। अदालतने एक सप्ताहमें फैसला सुनानेका हुक्म दिया।

[८]

सत्यनारायणको अब अपनी जीतमें कोई सन्देह न था। बादी पक्षके गवाह भी उखड़ गये थे और बहस भी सबूतसे खाली थी। अब इनकी गिनती भी जमींदारोंमें होगी, और संभव है, वह कुछ दिनोंमें रईस कहलाने लगें। पर किसी-न-किसी कारणसे अब वह शहरके गण्यमान्य पुरुषोंसे आँखें मिलाते शरमाते थे। उन्हें देखते ही उनका सिर नीचा हो जाता था। वह मनमें डरते थे कि वे लोग कहीं इस विषयपर कुछ पूछताछ न

कर बैठें। वह बाजारमें निकलते तो दूकानदारोंमें कुछ काना-फूसी होने लगती और लोग उन्हें तिरछी दृष्टिसे देखने लगते। अबतक लोग उन्हें विवेकशील और सच्चरित्र मनुष्य समझते थे; शहरके धनीमानी उन्हें इज्जतकी निगाहसे देखते और उनका बड़ा आदर करते थे। यद्यपि मुंशीजीको अबतक किसीसे टेढ़ी तिरछी सुननेका संयोग न पड़ा था, तथापि उनका मन कहता था कि सच्ची बात किसीसे छिपी नहीं है। चाहे अदालतसे उनकी जीत हो जाय; पर उनकी साख अब जाती रही। अब उन्हें लोग स्वार्थी, कपटी और दगाबाज समझेंगे! दूसरोंकी तो बात अलग रही, स्वयं उनके घरवाले उनकी उपेक्षा करते थे। बूढ़ी माताने तीन दिनसे मुँहमें पानी नहीं डाला था। स्त्री बार-बार हाथ जोड़कर कहती थी कि अपने प्यारे बालकोंपर दया करो। बुरे कामका फल कभी अच्छा नहीं होता! नहीं तो पहले मुझीको विष खिला दो!

जिस दिन फैसला सुनाया जानेवाला था, प्रातःकाल एक कुंजड़िन तरकारियाँ लेकर आयी और मुशिआइनसे बोली—बहूजी, हमने बाजारमें एक बात सुनी है। बुरा न मानो तो कहूँ। जिसको देखो उसके मुँहमें यही बात है कि लाला बाबूने जालसाजीसे पण्डिताइनका कोई इलाका ले लिया। हमें तो इसपर यकीन नहीं आता। लाला बाबूने न सँभाला होता तो अबतक पण्डिताइनका कहीं पता न लगता। एक अंगुल जमीन न बचती। इन्हीं ऐसा सरदार था कि सबको सँभाल लिया। तो क्या अब उन्हींके साथ बदी करेंगे? अरे बहू, कोई कुछ साथ लाया है कि ले जायगा। यही नेकी-बदी रह जाती है। बुरे

का फल बुरा होता है। आदमी न देखे पर अल्लाह सब कुछ देखता है।

बहूजीपर घड़ों पानी पड़ गया। जी चाहता था कि धरती फट जाती तो उसमें समा जाती। स्त्रियाँ स्वभावत: लज्जाकी मूर्ति होती हैं। उनमें आत्माभिमानकी मात्रा अधिक होती है। निन्दा और अपमान उनसे सहन नहीं हो सकता। सिर झुकाये हुए बोली—बुवा! मैं इन बातोंको क्या जानूँ? मैंने तो आज ही तुम्हारे मुँहसे सुनी है। कौन-सी तरकारियाँ हैं?

मुन्शी सत्यनारायण अपने कमरेमें लेटे हुए कुंजड़िनकी बातें सुन रहे थे। उसके चले जानेके बाद आकर स्त्रीसे पूछने लगे—यह शैतानकी खाला क्या कह रही थी?

स्त्रीने पतिकी ओरसे मुँह फेर लिया और जमीनकी ओर ताकते हुए बोली—क्या तुमने नहीं सुना। तुम्हारा गुणगान कर रही थी। तुम्हारे पीछे देखो किस-किसके मुँहसे ये बातें सुननी पड़ती हैं और किस किससे मुँह छिपाना पड़ता है।

मुन्शीजी अपने कमरेमें लौट आये। स्त्रीको कुछ उत्तर नहीं दिया। आत्मा लज्जासे परास्त हो गयी। जो मनुष्य सदैव सर्व-सम्मानित रहा हो, जो सदा आत्माभिमानसे सिर उठाकर चलता रहा हो, जिसकी सुकृतिकी सारे शहरमें चर्चा होती रही हो वह कभी सर्वथा लज्जा-शून्य नहीं हो सकता। लज्जा कुपथकी सबसे बड़ी शत्रु है। कुवासनाओंके भ्रममें पड़कर मुन्शीजीने समझा था, मैं इस कामको ऐसी गुप्त रीतिसे पूरा कर ले जाऊँगा कि किसीको कानोंकान खबर न होगी। पर उनका यह मनोरथ सिद्ध न हुआ। बाधायें आ खड़ी हुईं। उनके हटानेमें बड़े दुस्साहससे

काम लेना पड़ा। पर यह भी उन्होंने लज्जासे बचनेके निमित्त किया। जिसमें कोई यह न कहे कि अपनी स्वामिनीको धोखा दिया। इतना यत्न करनेपर भी वह निन्दासे न बच सके। बाजारकी सौदा बेचनेवालियाँ भी अब उनका अपमान करती है। कुवासनाओंसे दबी हुई लज्जा-शक्ति इस कड़ी चोटको सहन न कर सकी। मुन्शीजी सोचने लगे, अब मुझे धन-सम्पत्ति मिल जायगी, ऐश्वर्य्यवान् हो जाऊँगा, परन्तु निन्दासे मेरा पीछा न छूटेगा। अदालतका फैसला मुझे लोक-निन्दासे न बचा सकेगा। ऐश्वर्य्यका फल क्या है? मान और मर्य्यादा। उससे हाथ धो बैठा तो इस ऐश्वर्य्यको लेकर क्या करूँगा? चित्तकी शक्ति खोकर, लोक-लज्जा सहकर, जन समुदायमें नीच बनकर और अपने घरमें कलहका बीज बोकर यह सम्पत्ति मेरे किस काम आवेगी? और, यदि वास्तवमें कोई न्याय-शक्ति हो और वह मुझे इस दुष्कृत्यका दण्ड दे तो मेरे लिये सिवाय मुँहमें कालिख लगा कर निकल जानेके और कोई मार्ग न रहेगा। सत्यवादी मनुष्यपर कोई विपत्ति पड़ती है तो लोग उसके साथ सहानुभूति करते हैं। दुष्टोंकी विपत्ति लोगोंके लिये व्यंगकी सामग्री बन जाती है, उस अवस्थामें ईश्वर अन्यायी ठहराया जाता है। मगर दुष्टोंकी विपत्ति ईश्वरके न्यायको सिद्ध करती है। परमात्मन् इस दुर्दशासे किसी तरह मेरा उद्धार करो! क्यों न जाकर मैं भानुकुँवरिके पैरोंपर गिर पड़ूं और विनय करूँ कि यह मुकद्दमा उठा लो? शोक! पहले यह बात मुझे क्यों न सूझी! अगर कलतक मैं उनके पास चला गया होता तो सब बात बन जाती। पर अब क्या हो सकता है। आज तो फैसला सुनाया जायगा।

मुन्शीजी देरतक इसी विषयमें पड़े रहे, पर कुछ निश्चय न कर सके कि क्या करें।

भानुकुँवरिको भी विश्वास हो गया कि अब गाँव हाथसे गया। बेचारी हाथ मलकर रह गयी। रातभर उसे नींद न आयी। रह-रहकर मुन्शी सत्यनारायणपर क्रोध आता था। हाय! पापी, ढोल बजाकर मेरा तीस हजारका माल लिये जाता है और मैं कुछ नहीं कर सकती। आज कलके न्याय करनेवाले बिल्कुल आँखके अन्धे हैं। जिस बातको सारी दुनिया जानती है उसमें भी उनकी दृष्टि नहीं पहुँचती। बस, दूसरोंकी आँखोंसे देखते हैं। कोरे कागजोंके गुलाम हैं। न्याय वह है कि दूधका दूध, पानीका पानी कर दे। यह नहीं कि खुद ही कागजोंके धोखेमें आ जाय, खुद ही पाखण्डियोंके जालमें फँस जाय। इसीसे तो ऐसे छली, कपटी, दगाबाज दुरात्माओंका साहस बढ़ गया है। खैर गाँव जाता है तो जाय लेकिन सत्यनारायण, तुम तो शहरमें कहीं मुँह दिखानेके लायक नहीं रहे!

इस खयालसे भानुकुँवरिको कुछ शान्ति हुई। अपने शत्रुकी हानि मनुष्यको अपने लाभसे भी अधिक प्रिय होती है। मानव-स्वभाव ही कुछ ऐसा है। तुम हमारा एक गाँव ले गये, नारायण चाहेंगे, तो तुम भी इससे सुख न पाओगे। तुम आप नरककी आगमें जलोगे, तुम्हारे घरमें कोई दिया जलानेवाला न रहेगा।

फैसलेका दिन आ गया। आज इजलासमें बड़ी भीड़ थी। ऐसे-ऐसे महानुभाव भी उपस्थित थे, जो बगुलोंकी तरह अफसरोंकी बधाई और विदाईके सरोवरोंहीमें नज़र आया करते हैं। वकीलों और मुख्तारोंकी काली पल्टन भी जमा थी।

नियत समयपर जज साहबने इजलासको सुशोभित किया। विस्तृत न्याय-भवनमें सन्नाटा छा गया। अहलमदने सन्दूकसे तजवीज निकाली। लोग उत्सुक होकर एक-एक क़दम और आगे खिसक गये।

जजने फैसला सुनाया—मुद्दईका दावा खारिज। दोनों पक्ष अपना-अपना खर्च सह लें!

यद्यपि फैसला लोगोंके अनुमानके अनुसार ही था तथापि जजके मुँहसे उसे सुनकर लोगोंमें हलचल-सी पड़ गयी। उदासीन भावसे इस फैसलेपर आलोचनायें करते हुए लोग धीरे-धीरे कमरे से निकलने लगे।

यकायक भानुकुँवरि घूँघट निकाले इजलासपर आकर खड़ी हो गयी। जानेवाले लौट पड़े। जो बाहर निकल गये थे, दौड़कर आ गये और कौतूहलपूर्वक भानुकुँवरिकी तरफ ताकने लगे।

भानुकुँवरिने कम्पित स्वरमें जजसे कहा—सरकार, यदि हुक्म दें तो मैं मुन्शीजीसे कुछ पूछूँ।

यद्यपि यह बात नियमके विरुद्ध थी तथापि जजने दयापूर्वक आज्ञा दे दी।

तब भानुकुँवरिने सत्यनारायणकी तरफ देखकर कहा,—लालाजी! सरकारने तुम्हारी डिग्री तो कर ही दी, गाँव तुम्हें मुबारक रहे, मगर ईमान आदमीका सब कुछ है। ईमानसे कह दो, गाँव किसका है?

हजारों आदमी यह प्रश्न सुनकर कौतूहलसे सत्यनारायणकी तरफ देखने लगे। मुन्शीजी विचारसागरमें डूब गये। हृदयक्षेत्रमें संकल्प और विकल्पमें घोर संग्राम होने लगा। हजारों मनुष्यों-

की आँखें उनकी तरफ जमी हुई थीं। यथार्थ बात अब किसीसे छिपी न थी। इतने आदमियोंके सामने असत्य बात मुँहसे न निकल सकी। लज्जाने जबान बन्द कर ली, "मेरा" कहनेमें काम बनता था। कोई बाधा न थी। किन्तु घोरतम पापका जो दण्ड समाज दे सकता है उसके मिलनेका पूरा भय था। "आपका" कहनेसे काम बिगड़ता था। जीती जिताई बाजी हाथसे जाती थी। पर सर्वोत्कृष्ट कामके लिए समाजसे जो इनाम मिल सकता है उसके मिलनेकी पूरी आशा थी। आशाने भयको जीत लिया। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ जैसे ईश्वरने मुझे अपना मुख उज्ज्वल करनेका यह अन्तिम अवसर दिया है। मैं अब भी मानव-सम्मानका पात्र बन सकता हूँ। अब भी अपनी आत्माकी रक्षा कर सकता हूँ। उन्होंने आगे बढ़कर भानुकुँवरिको प्रणाम किया और काँपते हुए स्वरमें बोले—आपका।

हजारों मनुष्योंके मुँहसे एक गगनस्पर्शी ध्वनि निकली—सत्यकी जय।

जजने खड़े होकर कहा—यह कानूनका न्याय नहीं,

"ईश्वरीय न्याय"

है! इसे कथा न समझिये, सच्ची घटना है।

भानकुँवरि और सत्यनारायण अब भी जीवित हैं। मुंशीजीके इस नैतिक साहसपर लोग मुग्ध हो गये। मानवी न्यायपर ईश्वरीय न्यायने जो विलक्षण विजय पायी उसकी चर्चा शहर भरमें महीनों रही; भानुकुँवरि मुंशीजीके घर गयी। उन्हे मनाकर लायी। फिर अपना कारोबार उन्हें सौंपा और कुछ दिनोंके

उपरान्त वह गाँव उन्हींके नाम हिब्बा कर दिया। मुंशीजीने भी उसे अपने अधिकारमें रखना उचित न समझा। कृष्णार्पण कर दिया। अब इसकी आमदनी दीन दुखियों और विद्यार्थियोंकी सहायतामें खर्च होती है।

शंखनाद—

[१]

भानु चौधरी अपने गाँवके मुखिया थे। गाँवमें उनका बड़ा मान था। दारोगाजी उन्हें टाट बिना जमीनपर बैठने न देते। मुखिया साहबकी ऐसी धाक बँधी हुई थी कि उनकी मर्जी बिना गाँवमें एक पत्ता भी नहीं हिल सकता था। कोई घटना चाहे वह सास बहूका विवाद हो, चाहे मेंड़ या खेतका झगड़ा, चौधरी साहबके शासनाधिकारको पूर्णरूपसे सचेत करनेके लिये काफी थी। वह तुरन्त घटनास्थलपर जा पहुँचते। तहकीकात होने लगती, गवाह और सबूतके सिवा किसी अभियोगको सफलता सहित चलानेमें जिन बातोंकी जरूरत होती है, उन सबपर विचार होता और चौधरीजीके दर्बारसे फैसला हो जाता। किसीको अदालततक जानेकी जरूरत न पड़ती। हाँ, इस कष्टके लिये चौधरी साहब कुछ फीस जरूर ले लेते थे। यदि किसी अवसरपर

फीस मिलनेमें असुविधाके कारण उन्हें धीरजसे काम करना पड़ता तो गाँवमें आफत आ जाती थी। क्योंकि उनके धीरज और दारोगाजीके क्रोधमें कोई घनिष्ठ सम्बन्ध था। सारांश यह है कि चौधरीजीसे उनके दोस्त दुश्मन सभी चौकन्ने रहते थे।

[२]

चौधरी महाशयके तीन सुयोग्य पुत्र थे। बड़े लड़के बितान एक सुशिक्षित मनुष्य थे। डाकियेके रजिस्टरपर दस्तखत कर लेते थे। ये बड़े अनुभवी, बड़े मर्मज्ञ, बड़े नीतिकुशल, मिर्जईकी जगह कमीज पहनते, कभी कभी सिग्रेट भी पीते, जिससे उनका गौरव बढ़ता था। यद्यपि उनके ये दुर्व्यसन बूढ़े चौधरीको नापसन्द थे, पर बेचारे विवश थे, क्योंकि अदालत और कानूनके मामिले बितानके हाथोंमें थे। वह कानूनका पुतला था। कानूनके दफे जबानपर रखे रहते थे। गवाह गढ़नेमें वह पूरा उस्ताद था। मझले लड़के शानचौधरी कृषिविभागके अधिकारी थे, बुद्धिके मन्द लेकिन शरीरसे बड़े परिश्रमी। जहाँ घास न जमती हो वहाँ केसर जमा दें। तीसरे लड़केका नाम गुमान था। यह बड़ा रसिक साथही उद्दण्ड था। मुहर्रममें ढोल इतने जोरोंसे बजाता कि कानके पर्दे फट जाते। मछली फँसानेका बड़ा शौकीन था। बड़ा रंगीला जवान था। खंजड़ी बजा-बजाकर जब वह मीठे स्वरसे खियाल गाता तो रंग जम जाता। उसे दंगलका ऐसा शौक था कि कोसोंतक धावा मारता, पर घरवाले कुछ ऐसे शुष्क थे कि उसके इन व्यसनोंसे तनिक भी सहानुभूति न रखते थे। पिता और भाइयोंने तो उसे ऊसर खेत समझ रखा था। घुड़की धमकी,

शिक्षा और उपदेश, स्नेह और विनय किसीका उसपर कुछ भी असर न हुआ। हाँ, भावजें अभीतक उसकी ओरसे निराश न हुई थीं। वह अभीतक उसे कड़वी दवाइयाँ पिलाये जाती थीं। पर आलस्य वह राजरोग है जिसका रोगी कभी नहीं संभलता। ऐसा कोई विरला ही दिन जाता होगा कि बांके गुमानको भावजोंके कटुवाक्य न सुनने पड़ते हों। यह विषैले शर कभी-कभी उसके कठोर हृदयमें चुभ भी जाते, किन्तु यह घाव रात भरसे अधिक न रहता। भोर होते ही थकानके साथ ही यह पीड़ा भी शान्त हो जाती। तड़का हुआ. उसने हाथ मुँह धोया, बंसी उठायी और तालाबकी ओर चल खड़ा हुआ। भावजें फूलोंकी वर्षा किया करतीं, बूढ़े चौधरी पैंतरे बदलते रहते और भाई लोग तीखी निगाहसे देखा करते, पर अपनी धुनका पूरा बांका गुमान उन लोगोंके बीचमेंसे इस तरह अकड़ता चला जाता जैसे कोई मस्त हाथी कुत्तोंके बीचसे निकल जाता है। उसे सुमार्ग पर लानेके लिये क्या-क्या उपाय नहीं किये। बाप समझाता, बेटा ऐसी राह चलो जिसमें तुम्हें भी चार पैसे मिलें और गृहस्थीका भी निर्वाह हो। भाइयोंके भरोसे कबतक रहोगे, मैं पका आम हूँ। आज टपक पड़ूं या कल। फिर तुम्हारा निबाह कैसे होगा। भाई बात भी न पूछेंगे, भावजोंका रंग देखही रहे हो। तुम्हारे भी तो लड़के बाले हैं; उनका भार कैसे संभालोगे? खेतीमें जी न लगे, कहो कानिस्टेबलीमें भरती करा दूँ। बाँका गुमान खड़ा-खड़ा यह सब सुनता, लेकिन पत्थरका देवता था—कभी न पसीजता। इन महाशयके अत्याचारका दण्ड उनकी स्त्री बेचारीको भोगना पड़ता था, कड़ी मेहनतके घरमें जितने काम होते वह

उसीके सिर थापे जाते, उपले थापती, कुएँसे पानी लाती, आटा पीसती और इतनेपर भी जेठानियाँ सीधे मुँह बात न करतीं, वाक्य-बाणोंसे छेदा करतीं। एक बार जब वह पतिसे कई दिन रूठी रही तो बांके गुमान कुछ नर्म हुए। बापसे जाकर बोले—"मुझे कोई दूकान खुलवा दीजिए।" चौधरीने परमात्माको धन्यवाद दिया। फूले न समाये। कई सौ रुपये लगाकर कपड़ेकी दूकान खुलवा दी। गुमानके भाग जागे। तनजेबके चुननदार कुरते बनवाये, मलमलका साफा धानी रंगमें रंगवाया। सौदा बिके या न बिके उसे लाभ ही होता था। दूकान खुली हुई है, दस-पाँच गाढ़े मित्र जमे हुए हैं, चरसके दम और खियालकी तानें उड़ रही हैं—

"चल झटपटरी, जमुना तट री खड़ो नटखट री"

इस तरह तीन महीने चैनसे कटे। बाँके गुमानने खूब दिल खोलकर अरमान निकाले। यहाँ तक कि सारी लागत लाभ हो गयी। टाटके टुकड़ेके सिवा और कुछ न बचा। बूढ़े चौधरी कुएँमें गिरने चले, भावजोंने घोर आंदोलन मचाया; अरे राम! हमारे बच्चे और हम चीथड़ोंको तरसें, गाढ़ेका एक कुर्त्ता भी न नसीब हो और इतनी बड़ी दूकान इस निखट्टूका कफन बन गयी। अब कौन मुँह दिखावेगा? कौन मुँह लेकर घरमें पैर रखेगा? किन्तु बाँके गुमानके तीवर जरा भी मैले न हुए। वही मुँह लिए वह फिर घरमें आया और फिर वही पुरानी चाल चलने लगा। कानूनदाँ वितान इसके यह ठाठ-बाट देखकर जल जाता। मैं सारे दिन पसीना बहाऊँ, मुझे नयनसुखका कुर्त्ता भी न मिले, यह अपाहिज सारे दिन चारपाई तोड़े और यों बन ठन कर निकले।

ऐसे वस्त्र तो शायद मुझे अपने ब्याहमें भी न मिले होंगे। मीठे शानके हृदयमें भी कुछ ऐसे ही विचार उठते थे। अन्तमें जब यह जलन न सही गयी और अग्नि भड़की तो एक दिन कानूनदां बितानकी पत्नी गुमानके सारे कपड़े उठा लायी और उनपर मिट्टी-का तेल उड़ेल कर आग लगा दी। ज्वाला उठी। सारे कपड़े देखते-देखते जलकर राख हो गये। गुमान रोते थे। दोनों भाई खड़े तमाशा देखते थे। बूढ़े चौधरीने यह दृश्य देखा और सिर पीट लिया। यह द्वेषाग्नि है। घरको जलाकर तब बुझेगी।

[३]

यह ज्वाला तो थोड़ी देरमें शान्त हो गयी, परन्तु हृदयकी आग ज्यों-की-त्यों दहकती रही। अन्तमें एक दिन बूढ़े चौधरीने घरके सब मेम्बरोंको एकत्रित किया और इस गूढ़ विषयपर विचार करने लगे कि बेड़ा कैसे पार हो। बितानसे बोले—बेटा, तुमने आज देखा, बात-की-बातमें सैकड़ों रुपयोंपर पानी फिर गया; अब इस तरह निर्वाह होना असम्भव है। तुम समझदार हो, मुकद्दमे मामले करते हो, कोई ऐसी राह निकालो कि घर डूबनेसे बचे। मैं तो यह चाहता था कि जबतक चोला रहे सबको समेटे रहूँ, मगर भगवानके मनमें कुछ और ही है।

बितानकी नीतिकुशलता अपनी चतुर सहगामिनीके सामने लोप हो जाती थी। वह अभी इसका उत्तर सोच ही रहे थे कि श्रीमतीजी बोल उठीं—दादाजी! अब समझाने-बुझानेसे काम न चलेगा, सहते-सहते हमारा कलेजा पक गया। बेटेकी जितनी पीर बापको होगी, भाइयोंको उतनी क्या, उसकी आधी भी नहीं

हो सकती। मैं तो साफ कहती हूँ, गुमानका तुम्हारी कमाईमें हक है, उन्हें कञ्चनके कौर खिलाओ और चाँदीके हिंडोलेमें झुलाओ। हममें न इतना बूता है न इतना कलेजा, हम अपनी झोंपड़ी अलग बना लेंगे, हाँ जो कुछ हमारा हो वह हमको मिलना चाहिये। बाँट-बखरा कर दीजिये। बलासे चार आदमी हँसेंगे, अब कहाँतक दुनियाकी लाज ढोयें।

नीतिज्ञ पितापर इस प्रबल वक्तृताका असर हुआ, वह उनके विकसित और प्रमुदित चेहरेसे झलक रहा था। उनमें स्वयं इतना साहस न था कि इस प्रस्तावको इतनी स्पष्टतासे व्यक्त कर सकते। नीतिज्ञ महाशय गम्भीरतासे बोले—जायदाद मुश्तरका, मन्कूला या गैर मन्कूला, आपके हीन हयात तकसीम की जा सकती है, इसकी नजीरें मौजूद हैं। जमींदारको साकितुल मिल्कियत करनेका कोई इस्तहकाक नहीं है।

अब मन्दबुद्धि शानकी बारी आयी, पर बेचारा किसान, बैलोंके पीछे आँखें बन्द करके चलनेवाला, ऐसे गूढ़ विषयपर कैसे मुँह खोलता। दुविधामें पड़ा हुआ था। तब उसकी सत्यवक्ता धर्मपत्नीने अपनी जेठानीका अनुसरण कर यह कठिन कार्य सम्पन्न किया। बोली—बड़ी बहिनने जो कुछ कहा है उसके सिवा और दूसरा उपाय नहीं है। कोई तो कलेजा तोड़-तोड़कर कमावे, मगर पैसे-पैसेको तरसे, तन ढाकनेको वस्त्र तक न मिलें और कोई सुखकी नींद सोवे और हाथ बढ़ा-बढ़ाके खाय, ऐसी अन्धेर नगरीमें अब हमारा निबाह न होगा।

शान चौधरीने भी इस प्रस्तावका मुक्तकण्ठसे अनुमोदन किया, अब बूढ़े चौधरी गुमानसे बोले—क्यों बेटा, तुम्हें भी यही

मंजूर है ? अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। यह आग अब भी बुझ सकती है। काम सबका प्यारा होता है, चाम किसीका प्यारा नहीं होता, बोलो क्या बोलते हो ? कुछ काम-धन्धा करोगे या अभी आँखें नहीं खुलीं।

गुमानमें धैर्य्यकी कमी नहीं थी। बातोंको इस कान सुन उस कान उड़ा देना उसका नित्यकर्म्म था। किन्तु भाइयोंकी इस "जन मुरीदी" पर उसे क्रोध आ गया। बोला—भाइयोंकी जो इच्छा है वही मेरे मनमें भी लगी हुई है, मैं भी इस जंजालसे अब भागना चाहता हूँ। मुझसे न मजूरी हुई, न होगी। जिसके भाग्यमें चक्की पीसना बदा हो, वह पीसे। मेरे भाग्यमें तो चैन करना लिखा हुआ है, मैं क्यों अपना सिर ओखलीमें दूँ। मैं तो किसीसे काम करनेको नहीं कहता। आप लोग क्यों मेरे पीछे पड़े हुए हैं! अपनी-अपनी फिक्र कीजिये, मुझे आध सेर आटेकी कमी नहीं है।

इस तरहकी सभायें कितनी ही बार हो चुकी थीं, परन्तु इस देशकी सामाजिक और राजनैतिक सभाओंकी तरह इनसे भी कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता था। दो-तीन दिन गुमानने घरपर खाना नहीं खाया; जतनसिंह ठाकुर शौकीन आदमी थे, उन्हींकी चौपालमें पड़ा रहता। अन्तमें बूढ़े चौधरी गये और मनाके लाये, अब फिर वह पुरानी गाड़ी अड़ती, मचलती, हिलती, चलने लगी।

[४]

पांडेके घरके चूहोंकी तरह चौधरीके घरके बच्चे भी सयाने

थे। उनके लिये मिट्टीके घोड़े और लकड़ीकी नावें, कागजकी नावें थीं। फलोंके विषयमें उनका ज्ञान असीम था। गूलर और जंगली बेरके सिवा कोई ऐसा फल न था जिसे वह बीमारियोंका घर न समझते हों। लेकिन गुरदीनके खोंचेमें ऐसा प्रबल आकर्षण था कि उसकी ललकार सुनते ही उनका सारा ज्ञान व्यर्थ हो जाता था। साधारण बच्चोंकी तरह यदि वह सोते भी हों तो चौंक पड़ते थे। गुरदीन उस गाँवमें साप्ताहिक फेरे लगाता था। उसके शुभागमनकी प्रतीक्षा और आकांक्षामें कितने ही बालकोंको बिना किंडरगार्टनकी रंगीन गोलियोंके ही संख्यायें और दिनोंके नाम याद हो गये थे। गुरदीन बूढ़ासा मैलाकुचैला आदमी था, किन्तु आसपासमें उसका नाम उपद्रवी लड़कोंके लिये मनुमानमंत्रसे कम न था। उसकी आवाज सुनते ही उसके खोंचेपर बालकोंका ऐसा धावा होता कि मक्खियोंकी असंख्य सेनाको भी रणस्थलसे भागना पड़ता था, और जहाँ बच्चोंके लिये मिठाइयाँ थीं, वहाँ गुरदीनके पास माताओंके लिए इससे भी ज्यादा मीठी बातें थीं। माँ कितना ही मना करती रहे, बार बार पैसे न रहनेका बहाना करे, पर गुरदीन चटपट मिठाइयोंका दोना बच्चेके हाथमें रख ही देता और स्नेहपूर्ण भावसे कहता—बहूजी! पैसोंकी कुछ चिन्ता न करो, फिर मिलते रहेंगे; कहीं भागे थोड़े ही जाते हैं। नारायण तुमको बच्चे दिये हैं तो मुझे भी उनकी न्योछावर मिल जाती है, उन्हींकी बदौलत मेरे बालबच्चे भी जीते हैं, अभी क्या, ईश्वर इनका मौर तो दिखावे, फिर देखना कैसी ठनगन करता हूँ।

गुरदीनरामका यह व्यवहार चाहे वाणिज्य नियमोंके प्रतिकूल ही क्यों न हो, चाहे 'नौ नक्द न तेरह उधार' वाली कहा-

वत अनुभव-सिद्ध ही क्यों न हो किन्तु मिष्टभाषी गुरदीनको कभी अपने इस व्यवहारसे पछताने या उसमें संशोधन करनेकी जरूरत नहीं हुई ।

मगलका शुभ दिन था, बच्चे बड़ी बेचैनीसे अपने दरवाजोंपर खड़े गुरदीनकी राह देख रहे थे। कई उत्साही लड़के पेड़ोंपर चढ़ गये थे और कोई-कोई अनुरागसे विवश होकर गाँवसे बाहर निकल गये थे। सूर्य्य भगवान अपना सुनहरा थाल लिये पूरबसे पच्छिममें जा पहुँचे थे कि गुरदीन आता हुआ दिखायी दिया। लड़कोंने दौड़कर उसका दामन पकड़ा और आपसमें खींचातानी होने लगी। कोई कहता था, मेरे घर चलो, कोई अपने घरका न्योता देता था। सबमें पहले भानु चौधरीका मकान पड़ा, गुरदीनने अपना खोंचा उतार दिया। मिठाइयोंकी लूट शुरू हो गयी। बालकों और स्त्रियोंका ठट्ट लग गया। हर्ष-विषाद, सन्तोष और लोभ, ईर्षा और जलनकी नाट्यशाला सज गयी। कानूनदाँ बितानकी पत्नी भी अपने तीनों लड़कोंको लिए हुए निकली। शानकी पत्नी भी अपने दोनों लड़कोंके साथ उपस्थित हुई। गुरदीनने मीठी बातें करनी शुरू की। पैसे चोलीमें रखे, धेले-धेलेकी मिठाई दी, धेले-धेलेका आशीर्वाद। लड़के दोने लिये उछलते कूदते घरमें दाखिल हुए। अगर सारे गाँवमें कोई ऐसा बालक था; जिसने गुरदीनकी उदारतासे लाभ न उठाया हो तो वह बांके गुमनामका लड़का धान था।

यह कठिन था कि बालक धान अपने भाइयों, बहिनोंको हँस-हँस और उछल-उछल कर मिठाइयाँ खाते देखे और सब्र कर जाय। उसपर तुर्रा यह कि वह उसे मिठाइयाँ दिखा-दिखाकर

ललचाते और चिढ़ाते थे । बेचारा धान चीखता था और अपनी माताका आँचल पकड़-पकड़कर दरवाजेकी तरफ खींचता था। पर वह अबला क्या करे। उसका हृदय बच्चेके लिये ऐंठ-ऐंठ कर रह जाता था। उसके पास एक पैसा भी नहीं था। अपने दुर्भाग्यपर, जेंठानियोंकी निठुरतापर और सबसे ज्यादा अपने पतिके निखट्टूपनपर कुढ़-कुढ़कर रह जाती थी। अपना आदमी ऐसा निकम्मा न होता तो क्यों दूसरोंका मुँह देखना पडता, क्यों दूसरोंके धक्के खाने पड़ते। उसने धानको गोदमें उठा लिया और प्यारसे दिलासा देने लगी—"बेटा! रोओ मत, अबकी गुरदीन आवेगा तो मैं तुम्हें बहुतसी मिठाई ले दूँगी, मैं इससे अच्छी मिठाई बाजारसे मँगवा दूगी, तुम कितनी मिठाई खाओगे।" यह कहते-कहते उसकी आँखें भर आयीं; आह! यह मनहूस मंगल आज ही फिर आवेगा और फिर यही बहाने करने पड़ेंगे! हाय! अपना प्यारा बच्चा धेलेकी मिठाईको तरसे और घरमें किसीका पत्थरसा कलेजा न पसीजे। वह बेचारी तो इन चिन्ता-ओंमें डूबी हुई थी और धान किसी तरह चुप ही न होता था। जब कुछ वश न चला तो माँकी गोदसे उतरकर जमीनपर लोटने लगा और रो-रोकर दुनिया सिरपर उठा ली। माँने बहुत बहलाया, फुसलाया, यहाँ तक कि उसे बच्चेके इस हठपर क्रोध आ गया। मानवहृदयके रहस्य कभी समझनेमें नहीं आते। कहाँ तो बच्चेको प्यारसे चिपटाती थी, कहाँ ऐसी झल्लाई कि उसे दो तीन थप्पड़ जोरसे लगाये और घुड़ककर बोली—चुप रह अभागे! तेरा ही मुँह मिठाई खानेका है अपने दिनको नहीं रोता। मिठाई खाने चला है।

बांका गुमान अपनी कोठरीके द्वारपर बैठा हुआ यह कौतुक बड़े ध्यानसे देख रहा था। वह इस बच्चेको बहुत चाहता था। इस वक्तके थप्पड़ उसके हृदयमें तेज भालेके समान लगे और चुभ गये। शायद उसका अभिप्राय भी यही था। धुनियाँ रूईको धुननेके लिये तांतपर चोट लगाता है।

जिस तरह पत्थर और पानीमें आग छिपी रहती है, उसी तरह मनुष्यके हृदयमें भी,—चाहे वह कैसा ही क्रूर और कठोर क्यों न हो, उत्कृष्ट और कोमल भाव छिपे रहते हैं। गुमानकी आँखें भर आयीं, आँसूकी बूँदे बहुधा हमारे हृदयकी मलीनताको उज्ज्वल कर देती हैं। गुमान सचेत हो गया। उसने जाकर बच्चेको गोदमें उठा लिया और अपनी पत्नीसे करुणोत्पादक स्वरमें बोला—बच्चेपर इतना क्रोध क्यों करती हो। तुम्हारा दोषी मैं हूँ, मुझको जो दण्ड चाहे दो, परमात्माने चाहा तो कलसे लोग इस घरमें मेरा और मेरे बाल बच्चोंका भी आदर करेंगे। तुमने मुझे आज सदाके लिये इस तरह जगा दिया, मानो मेरे कानोंमें शंखनाद कर कर्मपथमें प्रवेश करनेका उपदेश दिया हो।

खून सफेद—

[१]

चैतका महीना था, लेकिन वे खलिहान, जहाँ अनाजकी ढेरियाँ लगी रहती थीं, पशुओंके शरणस्थल बने हुए थे, जहाँ घरोंसे फाग और बसन्तकी अलाप सुनाई पड़ती, वहाँ आज भाग्यका रोना था। सारा चौमासा बीत गया, पानीकी एक बून्द न गिरी। जेठमें एक बार मूसलाधार वृष्टि हुई थी, किसान फूले न समाये, खरीफकी फसल बो दी, लेकिन इन्द्रदेवने अपना सर्वस्व शायद एकही बार लुटा दिया था। पौधे उगे, बढ़े और फिर सूख गये। गोचरभूमिमें घास न जमी। बादल आते, घटायें उमड़तीं, ऐसा मालूम होता कि जलथल एक हो जायगा, परन्तु वे आशाकी नहीं, दुःखकी घटायें थीं। किसानोंने बहुतेरे जप-तप किये, ईंट और पत्थर देवी-देवताओंके नामसे पुजाये, बलिदान किये, पानीकी अभिलाषामें रक्तके पनाले बह गये, लेकिन इन्द्रदेव किसी तरह न पसीजे। न खेतोंमें पौधे थे, न गोचरोंमें घास, न तालाबमें पानी, बड़ी मुसीबतका सामना था। जिधर देखिये, धूल उड़ रही थी। दरिद्रता और क्षुधापीड़ाके दारुण दृश्य दिखायी देते थे। लोगोंने पहिले तो गहने और बरतन गिरवीं रखे और अन्तमें बेच डाले। फिर जानवरोंकी बारी आयी और जब जीविकाका अन्य कोई सहारा न रहा, तब जन्म-भूमिपर जान देनेवाले किसान बालबच्चोंको लेकर मजदूरी करने निकल पड़े। अकालपीड़ितोंकी सहायताके लिये कहीं-कहीं सरकारकी

सहायतासे काम खुल गया था। बहुतेरे वहीं जाकर जमे। जहाँ जिसको सुभीता हुआ वह उधर ही जा निकला।

[२]

सन्ध्याका समय था। जादोराय थकामाँदा आकर बैठ गया और स्त्रीसे उदास होकर बोला—"दरख्वास्त नामंजूर हो गयी।" यह कहते-कहते वह आँगनमें जमीनपर लेट गया। उसका मुख पीला पड़ रहा था और आँतें सिकुड़ी जा रही थीं। आज दो दिनसे उसने दानेकी सूरत नहीं देखी। घरमें जो कुछ विभूति थी। गहने, कपड़े, बरतन, भांड़े सब पेटमें समा गये। गाँवका साहूकार भी पतिव्रता स्त्रियोंकी भांति आँखें चुराने लगा। केवल तकावीका सहारा था, उसीके लिये दरख्वास्त दी थी, लेकिन आज वह भी नामंजूर हो गयी, आशाका झिलमिलाता हुआ दीपक बुझ गया।

देवकीने पतिको करुणादृष्टिसे देखा। उसकी आँखोंमें आँसू उमड़ आये। पति दिनभरका थका-माँदा घर आया है। उसे क्या खिलावे? लज्जाके मारे वह हाथ-पैर धोनेके लिये पानी भी न लायी। जब हाथ-पैर धोकर आशाभरी चितवनसे वह उसकी ओर देखेगा तब वह उसे क्या खानेको देगी? उसने आप कई दिनसे दानेकी सूरत नहीं देखी थी। लेकिन इस समय उसे जो दुःख हुआ वह क्षुधातुरताके कष्टसे कई गुना अधिक था। स्त्री घरकी लक्ष्मी है। घरके प्राणियोंको खिलाना-पिलाना वह अपना कर्त्तव्य समझती है। और चाहे यह उसका अन्याय ही क्यों न हो, लेकिन अपनी दीन हीन दशापर जो मानसिक वेदना उसे होती है वह पुरुषोंको नहीं हो सकती।

हठात् उसका बच्चा साधो नींदसे चौंका और मिठाईके लालचमें आकर वह बापसे लिपट गया। इन बच्चेने आज प्रातःकाल चनेकी रोटीका एक टुकड़ा खाया था और तबसे कई बार उठा और कईबार रोते-रोते सो गया। चार वर्षका नादान बच्चा, उसे वर्षा और मिठाइयोंमें कोई सम्बन्ध नहीं दिखाई देता था। जादोरायने उसे गोदमें उठा लिया और उसकी ओर दुखःभरी दृष्टिसे देखा। गर्दन झुक गयी और हृदय-पीड़ा आँखोंमें न समा सकी।

[३]

दूसरे दिन यह परिवार भी घरसे बाहर निकला। जिस तरह पुरुषके चित्तसे अभिमान और स्त्रीकी आँखसे लज्जा नहीं निकलती उसी तरह अपनी मेहनतसे रोटी कमानेवाला किसान भी मजदूरी की खोजमें घरसे बाहर नहीं निकलता। लेकिन हा पापी पेट, तू सब कुछ कर सकता है! मान और अभिमान, ग्लानि और लज्जा ये सब चमकते हुए तारे तेरी काली घटाओंकी ओटमें छिप जाते हैं।

प्रभातका समय था। ये दोनों विपत्तिके सताये घरसे निकले। जादोरायने लड़केको पीठपर लिया। देवकीने फटेपुराने कपड़ोंकी वह गठरी सिरपर रखी, जिसपर विपत्तिको भी तरस आता। दोनोंकी आँखें आँसुओंसे भरी थीं। देवकी रोती थी। जादोराय चुपचाप था। गाँवके दो-चार आदमियोंसे भेंट भी हुई, किन्तु किसीने इतना भी न पूछा कि कहाँ जाते हो? किसीके हृदयमें सहानुभूतिका वास न था।

जब ये लोग लालगज पहुँचे उस समय सूर्य ठीक सिरपर था, देखा मीलों तक आदमी-ही-आदमी दिखाई देते थे। लेकिन हर चेहरेपर दीनता और दुखके चिह्न झलक रहे थे।

बैसाखकी जलती हुई धूप थी। आगके झोंके जोर-जोरसे हरहराते हुए चल रहे थे। ऐसे समयमें हड्डियोंके अगणित ढाँचे जिनके शरीरपर किसी प्रकारका कपड़ा न था, मिट्टी खोदनेमें लगे हुए थे मानों वह मरघट भूमि थी, जहाँ मुर्दे अपने हाथों अपनी कबरें खोद रहे थे। बूढ़े और जवान, मर्द और बच्चे, सबके-सब ऐसे निराश और विवश होकर काममें लगे हुए थे मानो मृत्यु और भूख उनके सामने बैठी घूर रही है। इस आफत में न कोई किसीका मित्र था न हितू। दया, सहृदयता और प्रेम ये सब मानवीय भाव हैं, जिनका कर्त्ता मनुष्य है, प्रकृतिने हमको केवल एक भाव प्रदान किया है और वह स्वार्थ है। मानवीय भाव बहुधा कपटी मित्रोंकी भांति हमारा साथ छोड़ देते हैं, पर यह ईश्वर प्रदत्त गुण कभी हमारा गला नहीं छोड़ता।

[४]

आठ दिन बीत गये थे। सन्ध्या समय काम समाप्त हो चुका था। डेरेसे कुछ दूर आमका एक बाग था। वहीं एक पेड़के नीचे जादोराय और देवकी बैठी हुई थी। दोनों ऐसे कृश हो रहे थे कि उनकी सूरत नहीं पहिचानी जाती थी। अब वह स्वाधीन कृषक नहीं रहे। समयके हेर-फेरसे आज दोनों मजदूर बने बैठे हैं।

जादोरायने बच्चेको जमीनपर सुला दिया। उसे कई दिनसे बुखार आ रहा है। कमल-सा चेहरा मुरझा गया है। देवकीने

धीरेसे हिलाकर कहा—बेटा! आँखें खोलो। देखो सांझ हो गयी।

साधोने आँखें खोल दीं, बुखार उतर गया था, बोला—क्या हम घर आ गये माँ?

घरकी याद आ गयी, देवकीकी आँखें डबडबा आईं। उसने कहा—नहीं बेटा! तुम अच्छे हो जाओगे, तो घर चलेंगे। उठकर देखो, कैसा अच्छा बाग है!

साधो माँके हाथोंके सहारे उठा और बोला—माँ! मुझे बड़ी भूख लगी है, लेकिन तुम्हारे पास तो कुछ नहीं है। मुझे क्या खानेको दोगी?

देवकीके हृदयमें चोट लगी, पर धीरज धरके बोली—नहीं बेटा, तुम्हारे खानेको मेरे पास सब कुछ है। तुम्हारे दादा पानी लाते हैं तो मैं नरम नरम रोटियाँ अभी बनाये देती हूँ।

साधोंने माँकी गोदमें सिर रख लिया और बोला—"माँ! मैं न होता तो तुम्हें इतना दुःख तो न होता।' यह कहकर वह फूट-फूट कर रोने लगा। यह वही बेसमझ बच्चा है जो दो सप्ताह पहिले मिठाइयोंके लिए दुनिया सिरपर उठा लेता था। दुःख और चिन्ताने कैसा अनर्थ कर दिया है। यह विपत्तिका फल है। कितना दुःखपूर्ण, कितना करुणाजनक व्यापार है!

इसी बीचमें कई आदमी लालटेन लिये हुए वहाँ आये! फिर गाड़ियाँ आयीं। उनपर डेरे और खेमे लदे हुए थे। दम-के-दममें वहाँ खेमे गड़ गये। सारे बागमें चहल पहल नजर आने लगी। देवकी रोटियाँ सेंक रही थी, साधो धीरे-धीरे उठा और आश्चर्यसे देखता हुआ, एक डेरेके नजदीक जाकर खड़ा हो गया।

[५]

पादरी मोहनदास खेमेसे बाहर निकले तो साधो उन्हें खड़ा दिखायी दिया। उसकी सूरतपर उन्हें तरस आ गया। प्रेमकी नदी उमड़ आयी। बच्चेको गोदमें लेकर खेमेमें एक गद्देदार कोंचपर बैठा दिया और तब उसे बिस्कुट और केले खानेको दिये। लड़केने अपनी जिन्दगीमें इन स्वादिष्ट चीजोंको कभी न देखा था। बुखारकी बेचैन करनेवाली भूख अलग मार रही थी। उसने खूब मनभर खाया और तब कृतज्ञ नेत्रोंसे देखते हुए पादरी साहबके पास जाकर बोला—तुम हमको रोज ऐसी चीजें दिलाओगे ?

पादरी साहब इस भोलेपनपर मुस्कराके बोले, मेरे पास इससे भी अच्छी-अच्छी चीजें हैं।

इसपर साधोरायने कहा—अब मैं रोज तुम्हारे पास आऊँगा। माँके पास ऐसी अच्छी चीजें कहाँ ? वह तो मुझे चनेकी रोटियाँ खिलाती है।

उधर देवकीने रोटियाँ बनायीं और साधोको पुकारने लगी। साधोने मांके पास जाकर कहा—मुझे साहबने अच्छी-अच्छी चीज खानेको दी हैं। साहब बड़े अच्छे हैं

देवकीने कहा—मैंने तुम्हारे लिए नरम-नरम रोटियाँ बनाई हैं, आओ तुम्हें खिलाऊँ।

साधो बोला—'अब मैं न खाऊँगा। साहब कहते थे कि मैं तुम्हें रोज अच्छी-अच्छी चीजें खिलाऊँगा। मैं अब उनके साथ रहा करूँगा।'' मांने समझा कि लड़का हँसी कर रहा है। उसे छातीसे लगाकर बोली—क्यों बेटा! हमको भूल जाओगे ? देखो, मैं तुम्हें कितना प्यार करती हूँ।

साधो तुतलाकर बोला—"तुम तो मुझे रोज चनेकी रोटियाँ देया करती हो, तुम्हारे पास तो कुछ नहीं है। साहब मुझे केले और आम खिलावेंगे।" यह कहकर वह फिर खेमेकी ओर भागा और रातको वहीं सो रहा।

पादरी मोहनदासका पड़ाव वहाँ तीन दिन रहा। साधो दिन-भर उन्हींके पास रहता। साहबने उसे मीठी दवाइयाँ दीं। उसका बुखार जाता रहा। वह भोले-भाले किसान यह देखकर साहबको आशीर्वाद देने लगे। लड़का भला चंगा हो गया और आराम-से है। साहबको परमात्मा सुखी रखे। उन्होंने बच्चेकी जान रख ली।

चौथे दिन रातको ही वहांसे पादरी साहबने कूच किया। सुबहको जब देवकी उठी तो साधोका वहाँ पता न था। उसने समझा कहीं टपके ढूँढने गया होगा; किन्तु थोड़ी देर देखकर उसने जादोरायसे कहा - लल्लू यहाँ नहीं है।

उसने भी यही कहा, कहीं टपके ढूँढता होगा।

लेकिन जब सूरज निकल आया और काम पर चलनेका वक्त हुआ, तब जादोरायको कुछ संशय हुआ। उसने कहा—तुम यहीं बैठी रहना, मैं अभी उसे लिये आता हूँ।

जादोने आस-पासके सब बागोंको छान डाला और अन्तमें जब दस बज गये तो निराश लौट आया। साधो न मिला, यह देखकर देवकी ढाढ़ें मारकर रोने लगी।

फिर दोनों अपने लालकी तलाशमें निकले। अनेक विचार चित्तमें आने-जाने लगे। देवकीको पूरा विश्वास था कि साहबने उसपर कोई मन्त्र डालकर वशमें कर लिया। लेकिन जादोको

इस कल्पनाके मान लेनेमें कुछ सन्देह था। बच्चा इतनी दूर अन-जान रास्ते पर अकेले नहीं आ सकता। फिर भी दोनों गाड़ीके पहियों और घोड़ेके टापोंकी निशान देखते चले जाते थे। यहाँतक कि वे एक सड़कपर आ पहुँचे। वहाँ गाड़ीके बहुतसे निशान थे, उस विशेष लीककी पहचान न हो सकती थी। घोड़ेके टाप भी एक झाड़ीकी तरफ जाकर गायब हो गये। आशाका सहारा टूट गया। दोपहर हो गयी थी। दोनों धूपके मारे बेचैन और निराशा-से पागल हो रहे थे। वहीं एक वृक्षकी छायामें बैठ गये! देवकी विलाप करने लगी। जादोरायने उसे समझाना शुरू किया।

जब जरा धूपकी तेजी कम हुई तो दोनों फिर आगे चले। क़िन्तु अब आशाकी जगह निराशा साथ थी, घोड़ेकी टापोंके साथ उम्मेदका धुँधला निशान गायब हो गया था।

शाम हो गयी। इधर उधर गायों, बैलोंके झुण्ड निर्जीवसे पड़े दिखायी देते थे। यह दोनों दुखिया हिम्मत हारकर एक पेड़के नीचे टिक रहे। उसी वृक्षपर मैनेका एक जोड़ा बसेरा लिये हुए था। उनका नन्हा-सा शावक आज ही एक शिकारीके चंगुलमें फँस गया था। दोनों दिनभर उसे खोजते फिरे। इस समय निराश होकर बैठ रहे। देवकी और जादोको अभीतक आशाकी झलक दिखायी देती थी। इसीलिये वे बेचैन थे।

तीन दिनतक ये दोनों अपने खोये हुए लालकी तलाश करते रहे। दानेसे भेंट नहीं, प्याससे बेचैन होते तो दो चार घूँट पानी गलेके नीचे उतार लेते।

। आशाकी जगह निराशाका सहारा था। दुःख और करुणाके सिवाय और कोई वस्तु नहीं। किसी बच्चेके पैरके निशान देखते

तो उनके दिलोंमें आशा तथा भयकी लहरें उठने लगती थीं।

लेकिन प्रत्येक पग उन्हें अभीष्ट स्थानसे दूर लिये जाता था।

[६]

इस घटनाको हुए चौदह वर्ष बीत गये। इन चौदह वर्षोंमें सारी काया पलट गयी। चारों ओर रामराज्य दिखायी देने लगा। इन्द्रदेवने कभी उस तरह अपनी निर्दयता न दिखायी और न जमीनने ही। उमड़ी हुई नदियोंकीत रह अनाजसे ढेकियाँ भर चलीं। उजड़े हुए गाँव बस गये। मजदूर किसान बन बैठे और किसान जायदादकी तलाशमें नजरें दौड़ाने लगे। वही चैतके दिन थे। खरिहानोंमें अनाजके पहाड़ खड़े थे। भाट और भिखमंगे किसानोंकी बढ़तीके तराने गा रहे थे। सुनारोंके दरवाजे-पर सारे दिन और आधी राततक गाहकोंका जमघट बना रहता था। दरजीको सिर उठानेकी फुरसत न थी। इधर-उधर दरवाजोंपर घोड़े हिनहिना रहे थे। देवीके पुजारियोंको अजीर्ण हो रहा था।

जादोरायके दिन भी फिरे। घरपर छप्परकी जगह खपरैल हो गया है। दरवाजेपर अच्छे बैलोंकी जोड़ी बँधी हुई है। वह अब अपनी बहलीपर सवार होकर बाजार जाया करता है। उसका बदन अब उतना सुडौल नहीं है। पेटपर इस सुदशाका विशेष प्रभाव पड़ा है और बाल भी सफेद हो चले हैं। देवकीकी गिनती भी गाँवकी बूढ़ी औरतोंमें होने लगी है। व्यावहारिक बातोंमें उसकी बड़ी पूछ हुआ करती है। जब वह किसी पड़ोसिनके घर जाती है तो वहाँकी बहुएँ भयके मारे थरथराने लगती हैं।

उसके कटुवाक्य और तीव्र आलोचनाकी सारे गाँवमें धाक बँधी हुई है। महीन कपड़े अब उसे अच्छे नहीं लगते, लेकिन गहनोंके बारेमें वह इतनी उदासीन नहीं है।

उनके जीवनका दूसरा भाग इससे कम उज्ज्वल नहीं है। उनकी दो सन्तानें हैं। लड़का माधोसिंह अब खेतीबारीके काममें बापकी मदद करता है। लड़कीका नाम शिवगौरी है। वह भी मांको चक्की पीसनेमें सहायता दिया करती है और खूब गाती है। बर्त्तन धोना उसे पसन्द नहीं, लेकिन चौका लगानेमें निपुण है। गुड़ियोंके ब्याह करनेसे उसका जी कभी नहीं भरता। आये दिन गुड़ियोंके विवाह होते रहते हैं। हाँ, इनमें किफायतका पूरा ध्यान रहता है। खोये हुए साधोकी याद अभी तक बाकी है। उसकी चर्चा नित्य हुआ करती है और कभी बिना रुलाये नहीं रहती। देवकी कभी-कभी सारे दिन उस लाड़ले बेटेकी सुधमें अधीर रहा करती है।

साँझ हो गयी थी। बैल दिन भरके थके-माँदे सिर झुकाये चले आते थे। पुजारीने ठाकुर द्वारेमें घंटा बजाना शुरू किया। आजकल फसलके दिन हैं। रोज पूजा होती है, जादोराय खाटपर बैठे नारियल पी रहे थे। शिवगौरी रास्तेमें खड़ी उन बैलोंको कोस रही थी जो उसके भूमिस्थ विशाल भवनका निरादर करके उसे रौंदते चले जाते थे। घड़ियाल और घण्टेकी आवाज सुनते ही जादोराय भगवानका चरणामृत लेनेके लिये उठे ही थे कि उन्हें अकस्मात् एक नवयुवक दिखायी पड़ा, जो भूँकते हुए कुत्तों को दुतकारता, बाईसकिलको आगे बढ़ाता हुआ चला आ रहा था। उसने उनके चरणोंपर अपना सिर रख दिया। जादोरायने

गौरसे देखा और तब दोनों एक दूसरेसे लिपट गये। माधो भौंचक होकर बाईसकिलको देखने लगा। शिवगौरी रोती हुई घरमें भागी और देवकीसे बोली—'दादाको साहबने पकड़ लिया है।' देवकी घबरायी हुई बाहर आयी। साधो उसे देखते ही उसके पैरोंपर गिर पड़ा। देवकी लड़केको छातीसे लगाकर रोने लगी। गाँवके मर्द, औरतें और बच्चे सब जमा हो गये। मेला-सा लग गया।

[७]

साधोने अपने मातापितासे कहा—मुझ अभागेसे जो कुछ अपराध हुआ हो उसे क्षमा कीजिये, मैंने अपनी नादानीसे स्वयं बहुत कष्ट उठाये और आप लोगोंको भी दुःख दिया, लेकिन अब मुझे अपनी गोदमें लीजिये।

देवकीने रोकर कहा—जब तुम हमको छोड़कर भागे थे तो हम लोग तुम्हें तीन दिनतक बे-दाना-पानीके ढूँढते रहे, पर जब निराश हो गये, तब अपने भाग्यको रोकर बैठ रहे। तबसे आजतक कोई ऐसा दिन न गया होगा कि तुम्हारी सुधि न आयी हो। रोते रोते एक युग बीत गया; अब तुमने खबर ली है। बताओ बेटा! उस दिन तुम कैसे भागे और कहाँ जाकर रहे?

साधोने लज्जित होकर उत्तर दिया—माताजी अपना हाल क्या कहूँ, मैं पहर रात रहे आपके पाससे उठकर भागा। पादरी साहबके पड़ावका पता शाम ही को पूछ लिया था। बस पूछता हुआ दोपहरको उनके पास पहुँच गया। साहबने मुझे पहिले समझाया कि अपने घर लौट जाओ, लेकिन

जब मैं किसी तरह राजी न हुआ तो उन्होंने मुझे पूना भेज दिया। मेरी तरह वहाँ सैकड़ों लड़के थे। वहाँ बिस्कुट और नारंगियोंका भला क्या जिक्र ! जब मुझे आप लोगोंकी याद आती, मैं अक्सर रोया करता। मगर बचपनकी उम्र थी, धीरे-धीरे उन्हीं लोगोंसे हिल-मिल गया। हाँ, जबसे कुछ होश हुआ है और अपना-पराया समझने लगा हूँ तबसे अपनी नादानीपर हाथ मलता रहा हूँ। रात-दिन आप लोगोंकी रट लगी हुई थी। आज आप लोगोंके आशीर्वादसे यह शुभ दिन देखनेको मिला। दूसरोंमें बहुत दिन कटे, बहुत दिनोंतक अनाथ रहा। अब मुझे अपनी सेवामें रखिए। मुझे अपनी गोदमें लीजिए। मैं प्रेमका भूखा हूँ। बरसोंसे मुझे जो सौभाग्य नहीं मिला, वह अब दीजिये।

गाँवके बहुतसे बुड्ढे जमा थे। उनमेंसे जगतसिंह बोले—तो क्यों बेटा ! तुम इतने दिनोंतक पादरियोंके साथ रहे ! उन्होंने तुमको भी पादरी बना लिया होगा ?

साधोने सिर झुकाकर कहा—जी हाँ यह तो उनका दस्तूर ही है।

जगतसिंहने जादोरायकी तरफ देखकर कहा—यह बड़ी कठिन बात है।

साधो बोला—बिरादरी मुझे जो प्रायश्चित्त बतलावेगी, मैं उसे करूँगा। मुझसे जो कुछ बिरादरीका अपराध हुआ है, नादानीसे हुआ है। लेकिन मैं उसका दण्ड भोगनेके लिए तैयार हूँ।

जगतसिंहने फिर जादोरायकी तरफ कनखियोंसे देखा और

गम्भीरतासे बोले—हिन्दू धर्ममें ऐसा कभी नहीं हुआ है। यों तुम्हारे माँ-बाप तुम्हें अपने घरमें रख लें, तुम उनके लड़के हो, मगर बिरादरी कभी इस काममें शरीक न होगी। बोलो जादो-राय—क्या कहते हो, कुछ तुम्हारे मनकी भी तो सुन लें।

जादोराय बड़ी दुविधामें था। एक ओर तो अपने प्यारे बेटेकी प्रीति थी, दूसरी ओर बिरादरीका भय मारे डालता था। जिस लड़केके लिये रोते-रोते आंखें फूट गयीं, आज वही सामने खड़ा आँखोंसे आँसू भरे कहता है, पिताजी! मुझे अपनी गोदमें लीजिये और मैं पत्थरकी तरह अचल खड़ा हूँ। शोक! इन निर्दयी भाइयोंको किस तरह समझाऊँ, क्या करूँ क्या न करूँ।

लेकिन मांकी ममता उमड़ आयी। देवकीसे न रहा गया। उसने अधीर होकर कहा—मैं अपने लालको अपने घरमें रखूंगी और कलेजेसे लगाऊँगी। इतने दिनोंके बाद मैंने उसे पाया है, अब उसे नहीं छोड़ सकती।

जगतसिंह रुष्ट होकर बोले—चाहे बिरादरी छूट ही क्यों न जाय?

देवकीने भी गरम होकर जवाब दिया—हां, चाहे बिरादरी छूट ही जाय। लड़केवालोंहीके लिये आदमी बिरादरीकी आड़ पकड़ता है। जब लड़का ही न रहा तो भला बिरादरी किस काम आवेगी।

इसपर कई ठाकुर लाल-लाल आँखें निकालकर बोले—ठाकुराइन! बिरादरीकी तो खूब मर्यादा करती हो। लड़का चाहे किसी रास्तेपर जाय, लेकिन बिरादरी चूँतक न करे! ऐसी बिरादरी कहीं और होगी? हम साफ-साफ कहे देते हैं कि अगर

यह लड़का तुम्हारे घरमें रहा तो बिरादरी भी बता देगी कि, वह क्या कर सकती है ?

जगतसिंह कभी-कभी जादोरायसे रुपये उधार लिया करते थे। मधुर स्वरसे बोले—भाभी ! बिरादरी यह थोड़े ही कहती है कि तुम लड़नेको घरसे निकाल दो। लड़का इतने दिनोंके बाद घर आया है हमारे सिर आँखोंपर रहे। बस, जरा खाने-पीने और छत-छातका बचाव बना रहना चाहिये। बोलो—जादो भाई! अब बिरादरीको कहाँतक दबाना चाहते हो ?

जादोरायने साधोकी तरफ करुणाभरे नेत्रोंसे देखकर कहा—बेटा ! जहाँ तुमने हमारे साथ इतना सलूक किया है वहाँ जगत भाईकी इतनी कही और मान लो ?

साधोने कुछ तीक्ष्ण शब्दोंमें कहा—क्या मान लूँ ? यह कि अपनोंमें गैर बनकर रहूँ, अपमान सहूँ; मिट्टीका घड़ा भी मेरे छूनेसे अशुद्ध हो जाय ! न, यह मेरा किया न होगा, मैं इतना निर्लज्ज नहीं।

जादोरायको पुत्रकी यह कठोरता अप्रिय मालूम हुई। वे चाहते थे कि इस वक्त बिरादरीके लोग जमा हैं, उनके सामने किसी तरह समझौता हो जाय फिर कौन देखता है कि हम उसे किस तरह रखते हैं ? चिढ़कर बोले—इतनी बात तो तुम्हें माननी ही पड़ेगी।

साधोराय इस रहस्यको न समझ सका। बापकी इस बातमें उसे निष्ठुरताकी झलक दिखायी पड़ी। बोला—मैं आपका लड़का हूँ। आपके लड़केकी तरह रहूँगा। आपके प्रेम और भक्ति की प्रेरणा मुझे यहाँतक लायी है। मैं अपने घरमें रहने आया हूँ।

अगर यह नहीं है तो मेरे लिए इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है कि जितना जल्दी हो सके यहाँसे भाग जाऊँ। जिनका

खून सफेद

है उनके बीचमें रहना व्यर्थ है।

देवकीने रोकर कहा—लल्लू, मैं अब तुम्हें न जाने दूँगी। साधोकी आँखें भर आयीं, पर मुस्कराकर बोला—मैं तो तुम्हारी थालीमें खाऊँगा।

देवकीने उसे ममता और प्रेमकी दृष्टिसे देखकर कहा-मैंने तो तुझे छातीसे दूध पिलाया है, तू मेरी थालीमें खायगा तो क्या? मेरा बेटा ही तो है, कोई और तो नहीं हो गया!

साधो इन बातोंको सुनकर मतवाला हो गया। इनमें कितना स्नेह, कितना अपनापन था! बोला—माँ, आया तो मैं इसी इरादेसे था कि अब कहीं न जाऊँगा, लेकिन बिरादरीने मेरे कारण यदि तुम्हें जातिच्युत कर दिया तो मुझसे न सहा जायगा। मुझसे इन गँवारोंका कोरा अभिमान न देखा जायगा। इसलिए इस वक्त मुझे जाने दो। जब मुझे अवसर मिला करेगा तुम्हें देख जाया करूँगा। तुम्हारा प्रेम मेरे चित्तसे नहीं जा सकता। लेकिन यह असम्भव है कि मैं इस घरमें रहूँ और अलग खाना खाऊँ, अलग बैठूँ। इसके लिये मुझे क्षमा करना।

देवकी घरमेंसे पानी लायी। साधो-मुँह धोने लगा। शिवगौरीने मांका इशारा पाया तो डरते-डरते साधोके पास गई, साधोको आदरपूर्वक दण्डवत की। साधोने पहिले उन दोनोंको आश्चर्यसे देखा, फिर अपनी माँको मुस्कराते देखकर समझ

गया। दोनों लड़कोंको छातीसे लगा लिया और तीनों भाई बहिन प्रेमसे हँसने-खेलने लगे। माँ खड़ी यह दृश्य देखती थी और उमंगसे फूली न समाती थी।

जलपान करके साधोने बाईसकिल संभाली और मां बापके सामने सिर झुकाकर चल खड़ा हुआ। वहीं, जहाँसे तंग होकर आया था। उसी क्षेत्रमें जहाँ अपना कोई न था! देवकी फूट-फूट कर रो रही थी और जादोराय आंखोंमें आँसू भरे, हृदयमें एक ऐंठन सी अनुभव करता हुआ सोचता था, हाय! मेरे लाल, तू मुझसे अलग हुआ जाता है। ऐसा योग्य और होनहार लड़का हाथसे निकला जाता है और केवल इसलिए कि अब हमारा खून सफेद हो गया है।

गरीबकी हाय—

[१]

मुंशी रामसेवक भौंहें चढ़ाये हुए घरसे निकले और बोले—"इस जीनेसे तो मरना भला है' मृत्युको प्रायः इस तरहके जितने निमन्त्रण दिये जाते हैं, यदि वह सबको स्वीकार करती तो आज सारा संसार उजाड़ दिखाई देता।

मुंशी रामसेवक चाँदपुर गाँवके एक बड़े रईस थे। रईसोंके सभी गुण इनमें भरपूर थे। मानव-चरित्रकी दुर्बलतायें उनके

जीवनका आधार थीं। वह नित्य मुंसफी कचहरीके हातेमें एक नीमके पेड़के नीचे कागजोंका बस्ता खोले एक टूटीसी चौकीपर बैठे दिखायी देते थे। किसीने कभी उन्हें किसी इजलासपर कानूनी बहस या मुकद्दमेकी पैरवी करते नहीं देखा। परन्तु उन्हें सब लोग मुख्तार साहब कहकर पुकारते थे। चाहे तूफान आवे, पानी बरसे, ओले गिरें, पर मुख्तार साहब वहाँसे टससे मस न होते। जब वह कचहरी चलते तो देहातियोंके झुंड-के-झुंड उनके साथ हो लेते। चारों ओरसे उनपर विश्वास और आदरकी दृष्टि पड़ती। सबमें प्रसिद्ध था कि उनकी जीभपर "सरस्वती" विराजती है। इसे वकालत कहो या मुख्तारी, परन्तु यह केवल कुल मर्यादाकी प्रतिष्ठाका पालन था। आमदनी अधिक न होती थी। चाँदीके सिक्कोंकी तो चर्चा ही क्या, कभी-कभी ताँबेके सिक्के भी निर्भय उनके पास आनेसे हिचकते थे। मुंशीजीकी कानूनदानीमें कोई सन्देह न था। परन्तु "पास" के बखेड़ेने उन्हें विवश कर दिया था। खैर जो हो, उनका यह पेशा केवल प्रतिष्ठा पालनके निमित्त था। नहीं तो उनके निर्वाहका मुख्य साधन आसपासकी अनाथ, पर खाने-पीनेमें सुखी विधवाओं और भोले भाले, किन्तु धनी, वृद्धोंकी श्रद्धा थी। विधवायें अपना रुपया उनके यहाँ अमानत रखतीं। बूढ़े अपने कपूतोंके डरसे अपना धन उन्हें सौंप देते। पर रुपया एक बार उनकी मुट्ठीमें जाकर फिर निकलना भूल जाता था। वह जरूरत पड़नेपर कभी-कभी कर्ज ले लेते थे। भला बिना कर्ज लिये किसीका काम चल सकता है ? भोरको साँझके करारपर रुपया लेते, पर वह साँझ कभी नहीं आती थी। सारांश, मुंशीजी कर्ज लेकर देना सीखे नहीं थे।

यह उनकी कुलप्रथा थी। यही सब मामले बहुधा मुन्शीजीके सुख-चैनमें विघ्न डालते थे। कानून और अदालतका तो उन्हें कोई डर न था। इस मैदानमें उनका सामना करना पानीमें मगरसे लड़ना था। परन्तु जब कोई दुष्ट उनसे भिड़ जाता, उनकी ईमानदारीपर सन्देह करता और उनके मुँहपर बुरा-भला कहनेपर उतारू हो जाता, तब मुन्शीजीके हृदयपर बड़ी चोट लगती। इस प्रकारकी दुर्घटनायें प्रायः होती रहती थीं। हर जगह ऐसे ओछे लोग रहते हैं, जिन्हें दूसरोंको नीचा दिखानेमें ही आनन्द आता है। ऐसे ही लोगोंका सहारा पाकर कभी-कभी छोटे आदमी मुन्शीजीके मुँह लग जाते थे। नहीं तो, एक कुंजड़िन की इतनी मजाल नहीं थी कि आँगनमें जाकर उन्हें बुरा-भला कहे। मुन्शीजी उसके पुराने गाहक थे, बरसोंतक उससे साग भाजी ली थी। यदि दाम न दिया जाय तो कुंजड़िनको सन्तोष करना चाहिये था। दाम जल्दी या देरसे मिल ही जाते। परन्तु वह मुँहफट कुंजड़िन दोही बरसोंमें घबरा गयी, और उसने कुछ आने पैसोंके लिये एक प्रतिष्ठित आदमीका पानी उतार लिया। झुँझलाकर मुन्शीजी अपनेको मृत्युका कलेवा बनानेपर उतारू हो गये तो इसमें उनका कुछ दोष न था।

[२]

इसी गाँवमें मूँगा नामकी एक विधवा ब्राह्मणी रहती थी। उसका पति बर्माकी काली पल्टनमें हवल्दार था और लड़ाईमें वहीं मारा गया। सरकारकी ओरसे उसके अच्छे कामोंके बदले मूँगाको पाँच सौ रुपये मिले थे। विधवा स्त्री, जमाना

नाजुक था, बेचारीने सब रुपये मुन्शी रामसेवकको सौंप दिये, और महीने-महीने थोड़ा-थोड़ा उसमेंसे माँगकर अपना निर्वाह करती रही।

मुन्शीजीने यह कर्त्तव्य कई वर्षतक तो बड़ी ईमानदारीके साथ पूरा किया। पर जब बूढ़ी होनेपर भी मूँगा नहीं मरी और मुन्शीजीको यह चिन्ता हुई कि, शायद उसमेंसे आधी रकम भी स्वर्गयात्राके लिये नहीं छोड़ना चाहती, तो एक दिन उन्होंने कहा—"मूँगा! तुम्हें मरना है या नहीं? साफ साफ कह दो कि मैं ही अपने मरनेकी फिक्र करूँ।" उस दिन मूंगाकी आँखें खुलीं, उसकी नींद टूटी, बोली—मेरा हिसाब कर दो। हिसाबका चिट्ठा तैयार था। "अमानत" में अब एक कौड़ी बाकी न थी। मूंगाने बड़ी कड़ाईसे मुन्शीजीका हाथ पकड़ लिया और कहा—अभी मेरे ढाई सौ रुपये तुमने दबा रखे हैं। मैं एक कौड़ी भी न छोड़ूंगी।

परन्तु अनाथोंका क्रोध पटाखेकी आवाज है। जिससे बच्चे डर जाते हैं और असर कुछ नहीं होता। अदालतमें उसका कुछ जोर न था। न लिखा-पढ़ी थी, न हिसाब किताब। हाँ पञ्चायतसे कुछ आसरा था। पञ्चायत बैठी, कई गाँवके लोग इकट्ठे हुए। मुन्शीजी नीयत और मामलेके साफ थे, उन्हें पञ्चोंका क्या डर! सभामें खड़े होकर पञ्चोंसे कहा—

भाइयो! आप सब लोग सत्यपरायण और कुलीन हैं, मैं आप सब साहबोंका दास हूँ, आप सब साहबोंकी उदारता और कृपासे, दया और प्रेमसे, मेरा रोम-रोम कृतज्ञ है, क्या आप लोग सोचते हैं कि मैं इस अनाथिनी और विधवा स्त्रीके रुपये हड़प कर गया हूँ?

पञ्चोंने एक स्वरसे कहा—नहीं, नहीं! आपसे ऐसा नहीं हो सकता।

रामसेवक—यदि आप सब सज्जनोंका विचार हो कि मैंने रुपये दबा लिये, तो मेरे लिये डूब मरनेके सिवा और कोई उपाय नहीं। मैं धनाढ्य नहीं हूँ, न मुझे उदार होनेका घमण्ड है, पर अपनी कलमकी कृपासे, आप लोगोंकी कृपासे किसीका मुहताज नहीं हूँ। क्या मैं ऐसा ओछा हो जाऊंगा कि एक अनाथिनीके रुपये पचा लूं?

पञ्चोंने एक स्वरसे फिर कहा—नहीं नहीं। आपसे ऐसा नहीं हो सकता।

मुंह देखकर टीका काढ़ा जाता है। पञ्चोंने मुंशीजीको छोड़ दिया। पंचायत उठ गयी। मूंगाने आह भरकर सन्तोष किया और मनमें कहा—अच्छा, अच्छा! यहाँ न मिला तो न सही, वहाँ कहाँ जायगा।

[३]

अब कोई मूंगाका दुःख सुननेवाला और सहायक न था। दरिद्रतासे जो कुछ दुःख भोगने पड़ते हैं वह सब उसे झेलने पड़े। वह शरीरसे पुष्ट थी, चाहती तो परिश्रम कर सकती थी, पर जिस दिन पंचायत पूरी हुई, उसी दिनसे उसने काम करनेकी कसम खा ली। अब उसे रात-दिन रुपयोंकी रट लगी रहती, उठते-बैठते, सोते जागते, उसे केवल एक काम था और वह मुंशी रामसेवकका भला मनाना। अपने झोपड़ेके दरवाजेपर बैठी हुई रात-दिन, उन्हें सच्चे मनसे असीसा करती, बहुधा अपनी असीसके वाक्योंमें ऐसे कविताके [illegible] और उपमाओंके [illegible]

हार करती कि लोग सुनकर अचम्भेमें आ जाते। धीरे-धीरे मूंगा पगली हो चली। नंगे सिर, नंगे शरीर हाथमें एक कुल्हाड़ी लिये हुए सुनसान स्थानोंमें जा बैठती, झोपड़ेके बदले अब वह मरघटपर, नदीके किनारे खंडहरोंमें घूमती दिखाई देती। बिखरी हुई लटें, लाल-लाल आँखें, पागलों-सा चेहरा, सूखे हुए हाथ-पाँव। उसका यह स्वरूप देखकर लोग डर जाते थे। अब कोई उसे हँसीमें भी नहीं छेड़ता। यदि वह कभी गाँवमें निकल आती तो स्त्रियाँ घरोंके किवाड़ बन्द कर लेतीं। पुरुष कतराकर इधर-उधरसे निकल जाते और बच्चे चीख मारकर भागते, यदि कोई लडका भागता न था तो वह मुन्शी रामसेवकका सुपुत्र रामगुलाम था। बापमें जो कुछ कोर-कसर रह गयी थी वह बेटे में पूरी हो गयी थी। लड़कोंको उसके मारे नाकमें दम था। गाँवके काने और लंगड़े आदमी उसकी सूरतसे चिढ़ते थे और गालियाँ खानेमें तो शायद ससुरालमें आनेवाले दामादको भी इतना आनन्द न आता हो। वह मूंगाके पीछे तालियाँ बजाता, कुत्तोंको साथ लिये हुए उस समयतक रहता, जबतक वह बेचारी तंग आकर गाँवसे निकल न जाती। रुपया-पैसा, होश-हवास खोकर उसे पगलीकी पदवी मिली और अब वह सचमुच पगली था। अकेली बैठी अपने आप घंटों बातें किया करती। जिसमें रामसेवकके मांस, हड्डी, चमड़े, आँखें, कलेजा आदिको खाने, मसलने; नोचने, खसोटनेकी बड़ी उत्कट इच्छा प्रकट की जाती थी और जब उसकी यह इच्छा सीमातक पहुँच जाती तो वह रामसेवकके घरकी ओर मुँह करके खूब चिल्लाकर और डरा-वने शब्दोंमें हाँक लगाती—तेरा लोहू पीऊंगी।

प्रायः रातको सन्नाटेमें यह गर्जती हुई आवाज सुनकर स्त्रियाँ चौंक पड़ती थीं। परन्तु इस आवाजसे भयानक उसका ठठाकर हँसना था। मुन्शीजीके लहू पीनेकी कल्पित खुशीमें वह जोरसे हँसा करती थी। इस ठठानेसे ऐसी आसुरिक उद्दण्डता, ऐसी पाशविक उग्रता टपकती थी कि रातको सुनकर लोगोंका खून ठण्ढा हो जाता था। मालूम होता, मानों सैकड़ों उल्लू एक साथ हँस रहे हैं। मुन्शी रामसेवक बड़े हौसले और कलेजेके आदमी थे। न उन्हें दीवानीका डर था, न फौजदारीका। परन्तु मूंगाके इन डरावने शब्दोंको सुनकर वह भी सहम जाते। हमें मनुष्यके न्यायका डर न हो, परन्तु ईश्वरके न्यायका डर प्रत्येक मनुष्यके मनमें स्वभावसे रहता है? मूंगाका भयानक रातका घूमना, रामसेवकके मनमें कभी-कभी ऐसी ही भावना उत्पन्न कर देता। उनसे अधिक उनकी स्त्रीके मनमें। उनकी स्त्री बड़ी ही चतुर थी। वह इनको इन सब बातोंमें प्रायः सलाह दिया करती थी। उन लोगोंकी भूल थी, जो लोग कहते थे कि मुंशीजीकी जीभपर सरस्वती विराजती हैं। यह गुण तो उनकी स्त्रीको प्राप्त थी। बोलनेमें वह इतनी ही तेज थी, जितना मुंशीजी लिखनेमें थे और यह दोनों स्त्री-पुरुष प्रायः अपनी अवश दशामें सलाह करते कि अब क्या करना चाहिए।

[४]

आधी रातका समय था। मुन्शीजी नित्य नियमके अनुसार अपनी चिन्ता दूर करनेके लिये शराबके दो चार घूँट पीकर सो गये थे। यकायक मूंगाने उनके दरवाजेपर आकर जोरसे हाँक लगायी, "तेरा लहू पीऊँगी" और खूब खिलखिलाकर हँसी।

मुंशीजी यह भयावना ठहाका सुनकर चौंक पड़े। डरके मारे पैर थर-थर काँपने लगे। कलेजा धक-धक करने लगा। दिलपर बहुत जोर डालकर उन्होंने दरवाजा खोला, जाकर नागिनको जगाया। नागिनने झुँझलाकर कहा—क्या है, क्या कहते हो?

मुंशीजीने दबी आवाजसे कहा—वह दरवाजेपर खड़ी है।

नागिन उठ बैठी—क्या कहती है?

"तुम्हारा सिर।"

"क्या दरवाजेपर आ गयी?"

"हां, आवाज़ नहीं सुनती हो।"

नागिन मूँगासे नहीं, परन्तु उसके ध्यानसे बहुत डरती थी, तौ भी उसे विश्वास था कि मैं बोलनेमें उसे जरूर नीचा दिखा सकती हूँ। सँभलकर बोली—"कहो तो मैं उससे दो-दो बातें कर लूँ।" परन्तु मुन्शीजीने मना किया।

दोनों आदमी पैर दबाए हुए ड्योढ़ीमें गये और दरवाजेसे झाँक कर देखा, मूँगाकी धुँधली मूरत धरतीपर पड़ी थी और उसकी साँस तेजीसे चलती सुनाई देती थी। रामसेवकके लहू और मांसकी भूखमें वह अपना लहू और मांस सुखा चुकी थी। एक बच्चा भी उसे गिरा सकता था। परन्तु उससे सारा गाँव थर-थर काँपता। हम जीते मनुष्यसे नहीं डरते, पर मुर्देसे डरते हैं। रात गुजरी। दरवाजा बन्द था, पर मुन्शीजी और नागिनने बैठकर रात काटी। मूँगा भीतर नहीं घुस सकती थी, पर उसकी आवाजको कौन रोक सकता था, मूँगासे अधिक डरावनी उसकी आवाज थी।

भोरको मुंशीजी बाहर निकले और मूँगासे बोले—यहाँ क्यों पड़ी है ?

मूँगा बोली—तेरा लहू पीऊँगी।

नागिनने बल खाकर कहा—तेरा मुँह झुलस दूँगी।

पर नागिनके विषने मूँगापर कुछ असर न किया। उसने जोरसे ठहाका लगाया, नागिन खिसियानीसी हो गयी। हँसीके सामने मुँह बन्द हो जाता है। मुन्शीजी फिर बोले—यहाँसे उठ जा।

"न उठूँगी।"

"कबतक पड़ी रहेगी ?"

"तेरा लहू पीकर जाऊँगी।"

मुंशीजीकी प्रखर लेखनीका यहाँ कुछ जोर न चला और नागिनकी आगभरी बातें यहाँ सर्द हो गयीं। दोनों घरमें जाकर सलाह करने लगे, यह बला कैसे टळेगी। इस आपत्तिसे कैसे छुटकारा होगा।

देवी आती है तो बकरेका खून पीकर चली जाती है, पर यह डाइन मनुष्यका खून पीने आयी है। वह खून, जिसकी अगर एक बून्द भी कलम बनानेके समय निकल पड़ती थी, सर अठवारों और महीनों सारे कुनबेके अफसोस रहता और यह घटना गाँवमें घर-घर फैल जाती थी। क्या यही लहू पीकर मूँगाका सूखा शरीर हरा हो जायगा ?

गाँवमें यह चर्चा फैल गयी, मूँगा मुन्शीजीके दरवाजेपर धरना दिये बैठी है। मुन्शीजीके अपमानमें गाँववालोंको बड़ा मजा आता था। देखते-देखते सैकड़ों आदमियोंकी भीड़ लग गयी। इस

दरवाजेपर कभी-कभी भीड़ लगी रहती थी। यह भीड़ रामगुलाम को पसन्द न थी। मूँगापर उसे ऐसा क्रोध आ रहा था कि यदि उसका वश चलता तो, वह इसे कुएँमें ढकेल देता। इस तरहका विचार उठते ही रामगुलामके मनमें गुदगुदी समा गयी और वह बड़ी कठिनतासे अपनी हंसी रोक सका। अहा! वह कुएँमें गिरती तो क्या मजेकी बात होती! परन्तु यह चुड़ैल यहाँसे टलती ही नहीं, क्या करूँ। मुन्शीजीके घरमें एक गाय थी, जिसे खली दाना और भूसा तो खूब खिलाया जाता, पर वह सब उसकी हड्डियोंमें मिल जाता, उसका ढाँचा पुष्ट होता जाता था। रामगुलामने उसी गायका गोबर एक हाँडीमें घोला और सबका सब बेचारी मूँगापर उड़ेल दिया। उसके थोड़े बहुत छीटे दर्शकों-पर भी डाल दिये। बेचारी मूँगा लदफद हो गयी और लोग भाग खड़े हुए। कहने लगे यह मुन्शी रामगुलामका दरवाजा है। यहाँ इसी प्रकारका शिष्टाचार किया जाता है। जल्द भाग चलो। नहीं तो अबके इससे भी बढ़कर खातिर की जायगी। इधर भीड़ कम हुई, उधर रामगुलाम घरमें जाकर खूब हँसा और खूब तालियाँ बजाईं। मुन्शीजीने व्यर्थकी भीड़को ऐसे सहजमें और ऐसे सुन्दर रूपसे हटा देनेके उपायपर अपने सुशील लड़केकी पीठ ठोंकी। सब लोग तो चम्पत हो गये, पर बेचारी मूँगा ज्योंकी त्यों बैठी रह गयी।

दोपहर हुई। मूँगाने कुछ नहीं खाया। साँझ हुई। हजार कहने सुननेसे भी खाना नहीं खाया। गाँवके चौधरीने बड़ी खुशामद की। यहाँ तक कि, मुंशीजीने हाथतक जोड़े, पर देवी प्रसन्न न हुईं। निदान मुंशीजी उठकर भीतर चले गये। वह

कहते थे कि रूठनेवालेको भूख आप ही मना लिया करती है। मूँगाने यह रात भी बिना दाना-पानीके काट दी! लालाजी और ललाइनने आज फिर जाग-जागकर भोर किया। आज मूँगाकी गरज और हँसी बहुत कम सुनाई पड़ती थी। घरवालोंने समझा बला टली। सवेरा होते ही जो दरवाजा खोलकर देखा, तो वह अचेत पड़ी थी, मुँहपर मक्खियाँ भिन-भिना रही हैं और उसके प्रान-पखेरू उड़ चुके हैं। वह इस दरवाजेपर मरने ही आयी थी। जिसने उसके जीवनकी जमा पूँजी हर ली थी उसीको अपनी जान भी सौंप दी। अपने शरीरकी मिट्टीतक उसकी भेंट कर दी। धनसे मनुष्यको कितना प्रेम होता है। धन अपनी जानसे भी ज्यादा प्यारा होता है। विशेषकर बुढ़ापेमें। ऋण चुकानेके दिन ज्यों-ज्यों पास आते जाते हैं, त्यों त्यों उसका ब्याज बढ़ता जाता है।

यह कहना यहाँ व्यर्थ है कि गाँवमें इस घटनासे कैसी हलचल मची और मुन्शी रामसेवक कैसे अपमानित हुए। एक छोटेसे गाँवमें ऐसी असाधारण घटना होनेपर जितनी हलचल हो सकती उसके अधिक ही हुई। मुंशीजीका अपमान जितना होना चाहिये था, उसमे बाल बराबर भी कम न हुआ। उनका बचा खुचा पानी भी इस घटनासे चला गया। अब गाँवका चमार भी उनके हाथका पानी पीनेका, उन्हें छूनेका रवादार न था। यदि किसी घरमें कोई गाय खूँटेपर मर जाती है तो वह आदमी महीनों द्वार-द्वार भीख मागता फिरता है। न नाई उसकी हजामत बनावे, न कहार उसका पानी भरे, न कोई उसे छूए। यह गोहत्याका प्रायश्चित्त था। ब्रह्महत्याका दण्ड तो इससे भी कड़ा

है और इसमें अपमान भी बहुत है। मूँगा यह जानती थी और इसीलिये इस दरवाजेपर आकर मरी थी। वह जानती थी कि, मैं जीते जी तो कुछ नहीं कर सकती, मरकर उससे बहुत कुछ कर सकती हूँ। गोबरका उपला जब जलकर खाक हो जाता है तब साधु सन्त उसे माथेपर चढ़ाते हैं, पत्थरका ढेला आगमें जलकर आगसे अधिक तीखा और मारक होता है।

[५]

मुंशी रामसेवक कानूनदाँ थे। कानूनने उनपर कोई दोष नहीं लगाया था। मूँगा किसी कानूनी दफाके अनुसार नहीं मरी थी। ताजिरात हिन्दमें उसका कोई उदाहरण नहीं मिलता था। इसलिये जो लोग उनसे प्रायश्चित्त करवाना चाहते थे उनकी भारी भूल थी। कुछ हर्ज नहीं कहार पानी न भरे, न सही। वह आप पानी भर लेंगे। अपना काम आप करनेमें भला लाज ही क्या? बलासे नाई बाल न बनावेगा। हजामत बनानेका काम ही क्या है, दाढ़ी बहुत सुन्दर वस्तु है। दाढ़ी मर्दकी शोभा और सिङ्गार है और जो फिर बालोंसे ऐसी घिन होगी तो एक-एक आनेमें तो अस्तुरे मिलते हैं। धोबी कपड़े न धोवेगा इसकी भी कुछ परवाह नहीं। साबुन तो गली-गली कौड़ियोंके मोल आती है। एक बट्टी साबुनमें दरजनों कपड़े ऐसे साफ हो जाते हैं जैसे बगुलेके पर। धोबी क्या खाकर ऐसा साफ कपड़ा धोवेगा? पत्थरपर पटक पटककर कपड़ोंका लत्ता निकाल लेता है। आप आप पहने, दूसरोंको भाड़ेपर पहनावे, भट्ठीमें चढ़ाके, रेहमें भिगावे; कपड़ोंकी तो दुर्गति कर डालता है। जभी तो कुरते दो तीन सालसे अधिक नहीं चलते। नहीं तो दादा हर पाँचवें बरस दो

तीन अचकन और दो कुरते बनवाया करते थे। मुंशी रामसेवक और उनकी स्त्रीने दिन भर तो यों ही कहकर अपने मनको समझाया। साँझ होते ही उनकी तर्कनाएँ शिथिल हो गयीं।

अब उनके मनपर भयने चढ़ाई की। जैसे-तैसे रात बीतती थी भय भी बढ़ता जाता था। बाहरका दरवाजा भूलसे खुला रह गया था, पर किसीकी हिम्मत न पड़ती थी कि जाकर बन्द तो कर आवे। निदान नागिनने हाथमें दीया लिया। मुंशीजीने कुल्हाड़ा, रामगुलामने गड़ासा, इस ढंगसे तीनों आदमी चौंकते हिचकते दरवाजेपर आये, यहाँ मुंशीजीने बड़ी बहादुरीसे काम लिया। उन्होंने निधड़क दरवाजेसे बाहर निकलनेकी कोशिश की। काँपते हुए, पर ऊँची आवाजसे नागिनसे बोले—"तुम व्यर्थ डरती हो, वह क्या यहाँ बैठी है?" पर उनकी प्यारी नागिनने उन्हें अन्दर खींच लिया और झुंझलाकर बोली—तुम्हारा यही लड़कपन तो अच्छा नहीं। यह दंगल जीतकर तीनों आदमी रसोईके कमरेमें आये और खाना पकने लगा।

परन्तु मूँगा उनकी आँखोंमें घुसी हुई थी। अपनी परछाईंको देखकर मूँगाका भय होता था। अन्धेरे कोनेमें मूँगा बैठी मालूम होती थी। वही हड्डियोंका ढाँचा, वही बिखरे हुए बाल, वही पागलपन, वही डरावनी आँखें, मूँगाका नखसिख दिखायी देता था। इसी कोठरीमें आटे-दालके कई मटके रखे हुए थे, वहीं कुछ पुराने चिथड़े भी पड़े हुए थे। एक चूहेको भूखने बेचैन किया (मटकोंने कभी अनाजकी सूरत नहीं देखी थी, पर सारे गाँवमें मशहूर था कि इस घरके चूहे गजबके डाकू हैं) तो वह उन दानोंकी खोजमें जो मटकोंसे कभी नहीं गिरे थे, रेंगता हुआ

इस चिथड़ेके नीचे आ निकला। कपड़ेमें खड़खड़ाहट हुई। फैले हुए चिथड़े मूंगाकी पतली टांगे बन गयीं, नागिन देखकर झिझकी और चीख उठी। मुंशीजी बदहवास होकर दरवाजेकी ओर लपके, रामगुलाम दौड़कर इनकी टांगोंसे लिपट गया। चूहा बाहर निकल आया। उसे देखकर इन लोगोंके होश ठिकाने हुए। अब मुंशीजी साहस करके मटकेकी ओर चले। नागिनने कहा—रहने भी दो, देख ली तुम्हारी मरदानगी।

मुंशीजी अपनी प्रिया नागिनके इस अनादरपर बहुत बिगड़े—क्या तुम समझती हो मैं डर गया? भला डरकी क्या बात थी! मूंगा मर गई क्या वह बैठी है? मैं कल नहीं दरवाजेके बाहर निकल गया था। तुम रोकती रही मैं न माना।

मुंशीजीकी इस दलीलने नागिनको निरुत्तर कर दिया। कल दरवाजेके बाहर निकल जाना या निकलनेकी कोशिश करना साधारण काम न था। जिसके साहसका ऐसा प्रमाण मिल चुका है उसे डरपोक कौन कह सकता है। यह नागिनकी हठ-धर्मी थी।

खाना खाकर तीनों आदमी सोनेके कमरेमें आये। परन्तु मूंगाने यहाँ भी पीछा न छोड़ा। बातें करते थे, दिलको बहलाते थे, नागिनने राजा हरदौल और रानी सारन्धाकी कहानियाँ कहीं, मुंशीजीने फौजदारीके कई मुकद्दमोंका हाल कह सुनाया! परन्तु तो भी, इन उपायोंसे भी मूंगाकी मूर्ति उनकी आँखोंके सामनेसे न हटती थी। जरा भी खटखटाहट होती कि, तीनों चौंक पड़ते। इधर पत्तियोंमें सनसनाहट हुई कि इधर तीनोंके रोंगटे खड़े हो गये। रह-रह कर एक धीमी आवाज धरतीके

भीतरसे उनके कानोंमें आती थी—"तेरा लहू पीऊँगी।"

आधी रातको नागिन नींदसे चौंक पड़ी। वह इन दिनों गर्भवती थी। लाल-लाल आँखोंवाली तेज और नोकीले दांतों-वाली मूंगा उसकी छातीपर बैठी हुई जान पड़ती थी। नागिन चीख उठी। बावलीकी तरह आंगनमें भाग आयी और यकायक धरतीपर चित्त गिर पड़ी। सारा शरीर पसीने-पसीने हो गया। मुंशीजी भी उसकी चीख सुनकर चौंके, पर डरके मारे आँखें न खुलीं। अन्धोंकी तरह दरवाजा टटोलते रहे। बहुत देरके बाद उन्हें दरवाजा मिला। आँगनमें आये। नागिन जमीनपर पड़ी हाथ पाँव पटक रही थी। उसे उठाकर भीतर लाये, पर रातभर उसने आँखें न खोलीं! भोरको अकबक बकने लगी। थोड़ी देरमें ज्वर हो आया। बदन लाल तवा सा हो गया। सांझ होते-होते उसे सन्निपात हो आया और आधी रातके समय जब संसारमें सन्नाटा छाया हुआ था, नागिन इस संसारसे चल बसी। मूँगाके डर ने उसकी जान ली। जबतक मूँगा जीती रही, वह नागिनकी फुफकारसे सदा डरती रही। पगली होनेपर भी उसने कभी नागिनका सामना नहीं किया, पर अपनी जान देकर उसने आज नागिनकी जान ली। भयमें बड़ी शक्ति है। मनुष्य हवामें एक गिरह भी नहीं लगा सकता, पर इसने हवामें एक संसार रच डाला।

रात बीत गयी। दिन चढ़ता आता था, पर गाँवका कोई आदमी नागिनकी लाश उठानेको आता न दिखायी दिया। मुंशीजी घर-घर-घूमे पर कोई न निकला। भला हत्यारेके दरवाजेपर कौन जाय? हत्यारेकी लाश कौन उठावे? इस समय

मुंशीजीका रोबदाब, उनकी प्रबल लेखनीका भय और उनकी कानूनी प्रतिभा एक भी काम न आयी। चारों ओरसे हारकर मुंशीजी फिर अपने घर आये! यहाँ उन्हें अन्धकार ही अन्धकार दीखता था, दरवाजे तक तो आये, पर भीतर पैर नहीं रखा जाता था। न बाहर ही खड़े रह सकते थे। बाहर मूँगा थी भीतर नागिन, जीको कड़ा करके "हनुमान चालीसा" का पाठ करते हुए घरमें घुसे। उस समय उनके मनपर जो बीतती थी वही जानते थे। उसका अनुमान करना कठिन है। घरमें लाश पड़ी हुई; न कोई आगे न पीछे। दूसरा व्याह तो हो सकता था। अभी इसी फागुनमें तो पचासवाँ लगा है। पर ऐसी सुयोग्य और मीठी बोलीवाली स्त्री कहाँ मिलेगी? अफसोस! अब तगादा करनेवालोंसे बहस कौन करेगा, कौन उन्हें निरुत्तर करेगा? लेनदेनका हिसाब-किताब कौन इतनी खूबीसे करेगा? किसकी कड़ी आवाज तीरकी तरह तगादेदारोंकी छातीमें चुभेगी? यह नुकसान अब पूरा नहीं हो सकता। दूसरे दिन मुंशीजी लाशको एक ठेले गाड़ीपर लादकर गङ्गाजीकी तरफ चले।

[६]

शवके साथ जानेवालोंकी संख्या कुछ भी न थी। एक स्वयं मुंशीजी, दूसरे उनके पुत्ररत्न रामगुलामजी! इस बेइज्जतीने मूँगाकी लाश भी नहीं उठी थी।

मूँगाने नागिनकी जान लेकर भी मुन्शीजीका पिण्ड न छोड़ा। उनके मनमें हर घड़ी मूँगाकी मूर्त्ति विराजमान रहती

थी। कहीं रहते उनका ध्यान इसी ओर रहा करता था। यदि दिल बहलावका कोई उपाय होता तो शायद वह इतने बेचैन न होते, पर गाँवका एक पुतला भी उनके दरवाजेकी ओर न झाँकता था। बेचारे अपने हाथों पानी भरते, आपही बरतन धोते। सोच और क्रोध, चिन्ता और भय, इतने शत्रुओंके सामने एक दिमाग कबतक ठहर सकता। विशेषकर वह दिमाग जो रोज-रोज कानूनकी बहसोंमें खर्च हो जाता था।

अकेले कैदीकी तरह उनके दस-बारह दिन तो ज्यों त्योंकर कटे। चौदहवें दिन मुन्शीजीने कपड़े बदले और बोरियाबस्ता लिए हुए कचहरी चले। आज उनका चेहरा कुछ खिला हुआ था। जाते ही मेरे मुअक्किल मुझे घेर लेंगे। मेरी मातमपुर्सी करेंगे। मैं आँसुओंकी दो-चार बूँदें गिरा दूँगा। फिर बैनामों रेहननामों और सुलहनामोंकी भरमार हो जायगी। मुट्ठी गरम होगी। शामको जरा नशे-पानीका रंग जम जायगा, जिसके छूट जानेसे जी और भी उचाट हो रहा था। इन्हीं विचारोंमें मग्न मुन्शीजी कचहरी पहुँचे।

पर वहाँ रेहननामोंकी भरमार और बैनामोंकी बाढ़ और मुअक्किलोंकी चहल-पहलके बदले निराशाकी रेतीली भूमि नजर आयी। बस्ता खोले घण्टों बैठे रहे, पर कोई नजदीक भी न आया। किसीने इतना भी न पूछा कि आप कैसे हैं! नए मुअक्किल तो खैर, बड़े-बड़े पुराने मुअक्किल जिनका मुन्शीजीसे कई पीढ़ियोंसे सरोकार था, आज उनसे मुँह छिपाने लगे। वह नालायक और अनाड़ी रमजान जिसकी मुन्शीजी हँसी उड़ाते थे और जिसे शुद्ध लिखना भी न आता था, गोपियोंमें कन्हैया बना

हुआ था। वाहरे भाग्य! मुअक्किल यों मुँह फेरे चले जाते हैं मानो कभीकी जान-पहचान ही नहीं। दिनभर कचहरीकी खाक छाननेके बाद मुन्शीजी अपने घर चले। निराशा और चिन्तामें डूबे हुए ज्यों-ज्यों घरके निकट आते थे, मूँगाका चित्र सामने आता जाता था। यहाँतक कि जब घरका द्वार खोला और दो कुत्ते जिन्हें रामगुलामने बन्द कर रखा था झटपट बाहर निकले तो मुन्शीजीके होश उड़ गये; एक चीख मारकर जमीनपर गिर पड़े।

मनुष्यके मन और मस्तिष्कपर भयका जितना प्रभाव होता है, उतना और किसी शक्तिका नहीं। प्रेम, चिन्ता, निराशा, हानि यह सब मनको अवश्य दुःखित करते हैं, यह हवाके हलके झोंके हैं और भय प्रचण्ड आँधी है। मुन्शीजीपर इसके बाद क्या बीती मालूम नहीं, कई दिनोंतक लोगोंने उन्हें कचहरी जाते और वहाँसे मुरझाये हुए लौटते देखा। कचहरी जाना उनका कर्त्तव्य था और यद्यपि वहां मुअक्किलोंका अकाल था, तौभी तगादेवालों से गला छुड़ाने और उनको भरोसा दिलानेके लिये अब यही एक लटका रह गया था। इसके बाद वह कई महीने तक देख न पड़े। बद्रीनाथ चले गये। एक दिन गाँवमें एक साधू आया, भभूत रमाये, लम्बी-लम्बी जटायें, हाथमें कमण्डल। उसका चेहरा मुन्शी रामसेवकसे बहुत मिलता जुलता था। बोल-चालमें भी अधिक भेद न था। वह एक पेड़के नीचे धूनी रमाये बैठा रहा। उसी रातको मुन्शीजी रामसेवकके घरसे धूआँ उठा, फिर आगकी ज्वाला दीखने लगी और आग भभक उठी। गाँवके सैकड़ों आदमी दौड़े, आग बुझानेके लिये नहीं, तमाशा देखनेके लिये। एक

गरीबकी हाय

में कितना प्रभाव है! रामगुलाम मुन्शीजीके गायब हो जानेपर अपने मामाके यहाँ चला गया और वहाँ कुछ दिनों रहा, पर वहाँ उसकी चाल-ढाल किसीको पसन्द न आयी।

एक दिन उसने किसीके खेतमें मूली नोची। उसने दो-चार घौल लगाये। उसपर वह इस तरह बिगड़ा कि जब उसके चने खलिहानमें आये तो उसने आग लगा दी। सारा-का-सारा खलिहान जलकर खाक हो गया। हजारों रुपयोंका नुकसान हुआ। पुलिसने तहकीकात की, रामगुलाम पकड़ा गया। इसी अपराधमें वह चुनारके रिफार्मेन्टरी स्कूलमें मौजूद है।

दो भाई—

[१]

प्रातःकाल सूर्यकी सुहावनी सुनहरी धूपमें कलावती दोनों बेटोंको जांघोंपर बैठा दूध और रोटी खिलाती थी। केदार बड़ा था, माधव छोटा। दोनों मुँहमें कौर लिये, कई पग उछल-कूदकर फिर जांघोपर आ बैठते और अपनी तोतली बोलीमें इस प्रार्थनाकी रट लगाते थे जिसमें एक पुराने सहृदय कविने किसी जाड़ेके सताये हुए बालकके हृदयोद्गारको प्रकट किया है।

"दैव दैव घाम करो तुम्हरे बालकको लगता जाड़"

माँ उन्हें चुमकारकर बुलाती और बड़े-बड़े कौर खिलाती। उसके हृदयमें प्रेमकी उमंग थी और नेत्रोंमें गर्वकी झलक। दोनों भाई बड़े हुए। साथ-साथ गलेमें बाहें डाले खेलते थे। केदारकी बुद्धि चुस्त थी। माधवका शरीर। दोनोंमें इतना स्नेह था कि साथ-साथ पाठशाला जाते, साथ-साथ खाते और साथ-ही साथ रहते थे। दोनों भाइयोंका ब्याह हुआ। केदारकी बहू चम्पा अमितभाषिणी और चंचला थी। माधवकी बधू श्यामा सांवली सलोनी. रूपराशिकी खानि थी। बड़ीही मृदुभाषिणी, बड़ीही सुशीला और शान्तस्वभावा थी।

केदार चम्पा पर मोहे और माधव श्यामापर रीझे। परन्तु कलावतीका मन किसीसे न मिला। वह दोनोंसे प्रसन्न और दोनोंसे अप्रसन्न थी। उसकी शिक्षादीक्षाका बहुत अंश इस व्यर्थके प्रयत्नमें व्यय होता था कि चम्पा अपनी कार्यकुशलताका एक भाग श्यामाके शान्तस्वभावसे बदल ले।

दोनों भाई सन्तानवान हुए। हरा-भरा वृक्ष खूब फैला और फलोंसे दल गया। कुत्सित वृक्षमें केवल एक फल दृष्टिगोचर हुआ, वह भी कुछ पीलासा मुरझाया हुआ। किन्तु दोनों अप्रसन्न थे। माधवको धन-सम्पत्तिकी लालसा थी और केदारको सन्तानकी अभिलाषा।

भाग्यकी इस कूटनीतिने शनैःशनैः द्वेषका रूप धारण किया, जो स्वाभाविक था। श्यामा अपने लड़कोंके संवारने-सुधारनेमें लगी रहती; उसे सिर उठानेकी फुरसत नहीं मिलती थी। बेचारी चम्पाको चूल्हेमें जलना और चक्कीमें पीसना पड़ता। यह अनीति

कभी-कभी कटु शब्दोंमें निकल जाती। श्यामा सुनती, कुढ़ती और चुपचाप सह लेती। परन्तु उसकी यह सहनशीलता चम्पाके क्रोधको शान्त करनेके बदले और बढ़ाती। यहाँ तक कि प्याला लबालब भर गया। हिरन भागनेको राह न पाकर शिकारीकी तरफ लपका। चम्पा और श्यामा समकोण बनानेवाली रेखाओंकी भांति अलग हो गयीं। उस दिन एक ही घरमें दो चूल्हे जळे, परन्तु भाइयोंने दानेकी सूरत न देखी और कलावती सारे दिन रोती रही।

[२]

कई वर्ष बीत गये। दोनों भाई जो किसी समय एक ही पालथीपर बैठते थे; एक ही थालीमें खाते थे और एक ही छातीसे दूध पीते थे; उन्हें अब एक घरमें, एक गांवमें रहना कठिन हो गया। परन्तु कुलकी साखमें बट्टा न लगे, इसलिये ईर्ष्या और द्वेषकी धधकती हुई आगको राखके नीचे दबानेकी व्यर्थ चेष्टा की जाती थी। उन लोगोंमें अब भ्रातृ-स्नेह न था। केवल भाईके नामकी लाज थी। मां अब भी जीवित थी, पर दोनों बेटोंका वैमनस्य देखकर आँसू बहाया करती। हृदयमें प्रेम था, पर नेत्रोंमें अभिमान न था। कुसुम वही था, परन्तु वह छटा न थी।

दोनों भाई जब लड़के थे, तब एकको रोते देख दूसरा भी रोने लगता था, तब वह नादान, बेसमझ और भोले थे। आज एकको रोते हुए देख दूसरा हँसता और तालियाँ बजाता। अब वह समझदार और बुद्धिमान हो गये थे।

जब उन्हें अपने परायेकी पहचान न थी, उस समय यदि

कोई छेड़नेके लिये एकको अपने साथ ले जानेकी धमकी देता तो दूसरा जमीनपर लोट जाता और उस आदमीका कुर्ता पकड़ लेता। अब यदि एक भाईको मृत्यु भी धमकाती तो दूसरेके नेत्रोंमें आँसू न आते। अब उन्हें अपने परायेकी पहचान हो गयी थी।

बेचारे माधवकी दशा शोचनीय थी। खर्च अधिक था और आमदमी कम। उसपर कुल-मर्यादाका निर्वाह। हृदय चाहे रोये, पर होंठ हँसते रहें। हृदय चाहे मलीन हो, पर कपड़े मैले न हों। चार पुत्र थे, चार पुत्रियाँ, और आवश्यक वस्तुयें मोतियोंके मोल। कुछ पांइयोंकी जमींदारी कहाँतक सम्हालती! लड़कोंका ब्याह अपने वशकी बात थी, पर लड़कियोंका विवाह कैसे टल सकता था। दो पाई जर्मान पहली कन्याके विवाहकी भेंट हो गयी। उसपर भी बराती बिना भात खाये आँगनसे उठ गये। शेष दूसरी कन्याके विवाहमें निकल गयी। सालभर बाद तीसरी लड़कीका विवाह हुआ, पेड़ पत्ते भी न बचे। हाँ,-अबकी डाल भरपूर थी। परन्तु दरिद्रता और धरोहरमें वही सम्बन्ध है जो मांस और कुत्ते में।

[३]

इस कन्याका अभी गौना न हुआ था कि माधवपर दो सालके बकाया लगानका वारण्ट आ पहुँचा। कन्याके गहने गिरों (बन्दक) रख गये। गला छूटा। चम्पा इसी समयकी ताकमें थी। तुरत नये-नये नातेदारोंको सूचना दी, तुम लोग बेसुध बैठे हो, यहाँ गहनोंका सफाया हुआ जाता है। दूसरे दिन एक

नाई और दो ब्राह्मण माधवके दरवाजेपर आकर बैठ गये। बेचारेके गलेमें फाँसी पड़ गयी। रुपये कहाँसे आवें, न जमीन न जायदाद, न बाग न बगीचा। रहा विश्वास, वह कभीका उठ चुका था; अब यदि कोई सम्पत्ति थी तो केवल वही दो कोठरियाँ, जिनमें उसने अपनी सारी आयु बितायी थी, और उनका कोई ग्राहक न था। विलम्बसे नाक कटी जाती थी। विवश होकर केदारके पास आया और आँखोंमें आँसू भरे बोला—भैया, इस समय में बड़े सङ्कटमें हूं, मेरी सहायता करो।

केदारने उत्तर दिया—मद्धू! आजकल मैं भी तङ्ग हो रहा हूँ, तुमसे सच कहता हूँ।

चम्पा अधिकारपूर्ण स्वरसे बोली – अरे, तो क्या इनके लिये भी तंग हो रहे है? अलग भोजन करनेसे क्या इज्जत अलग हो जायगी?

केदारने स्त्रीकी ओर कनखियोंसे ताककर कहा—नहीं नहीं, मेरा यह प्रयोजन नहीं था। हाथ तंग है तो क्या कोई न-कोई प्रबन्ध किया ही जायगा।

चम्पाने माधवसे पूछा—पाँच बीससे कुछ ऊपर ही पर गहने रखे थे न?

माधवने उत्तर दिया—हाँ! ब्याज सहित कोई सवा सौ रुपये होते हैं।

केदार रामायण पढ़ रहे थे। फिर पढ़नेमें लग गये। चम्पाने तत्वकी बातचीत शुरू की—रुपया बहुत है, हमारे पास होता तो कोई बात न थी। परन्तु हमें भी दूसरेसे दिलाना पड़ेगा और महाजन बिना कुछ लिखाये-पढ़ाये रुपया देते नहीं।

माधवने सोचा यदि मेरे पास कुछ लिखाने-पढ़ानेको होता तो क्या और महाजन मर गये थे, तुम्हारे दरवाजे आता क्यों? बोला—लिखने-पढ़नेको मेरे पास है ही क्या? जो कुछ जगह जायदाद है वह यही घर है।

केदार और चम्पाने एक दूसरेको मर्मभेदी नयनोंसे देखा और मन-ही-मन कहा—क्या आज सचमुच जीवनकी प्यारी अभिलाषाएँ पूरी होंगी? परन्तु हृदयकी यह उमंग मुँहतक आते-आते गम्भीर रूप धारण कर गयी। चम्पा बड़ी गम्भीरतासे बोली—घरपर तो कोई महाजन कदाचित ही रुपया दे। शहर हो तो कुछ किराया ही आवे, पर गँवईमें तो कोई सेंतमें रहनेवाला भी नहीं। फिर साझेकी चीज ठहरी।

केदार डरे कि कहीं चम्पाकी कठोरतासे खेल बिगड़ न जाय। बोले—एक महाजनसे मेरा जान-पहिचान है, वह कदाच्चित कहने-सुननेमें आ जाय।

चम्पाने गर्दन हिलाकर इस युक्तिकी सराहना की और बोली—पर दो-तीन बीससे अधिक मिलना कठिन है।

केदारने जानपर खेलकर कहा—अरे बहुत दबानेसे चार बीस हो जायँगे और क्या।

अबकी चम्पाने तीव्र दृष्टिसे केदारको देखा और अनमनीसी होकर बोली—महाजन ऐसे अन्धे नहीं होते।

माधव अपने भाई भावजके इस गुप्त रहस्यको कुछ-कुछ समझता था। वह चकित था कि इन्हें इतनी बुद्धि कहाँसे मिल गई। बोला—और रुपये कहाँसे आवेंगे?

चम्पा चिढ़कर बोली—और रुपयोंके लिये और फिक्र करो!

सवा सौ रुपये इन दो कोठरियोंके इस जन्ममें कोई न देगा, चार बीस चाहो तो एक महाजनसे दिला दूँ, लिखा-पढ़ी कर लो।

माधव इन रहस्यमय बातोंसे सशंक हो गया। उसे भय हुआ कि यह लोग मेरे साथ कोई गहरी चाल चल रहे हैं। दृढ़ताके साथ अकड़कर बोला—और कौन सी फिक्र करूँ? गहने होते तो कहता लाओ रख दूँ। यहाँ तो कच्चा सूत भी नहीं है। जब बदनाम हुए तो क्या दसके लिये, क्या पचासके लिये दोनों एक ही बात है। यदि घर बेचकर मेरा नाम रह जाय तो यहाँतक तो स्वीकार है, परन्तु घर भी बेचूँ और उसपर भी प्रतिष्ठा धूलमें मिले, ऐसा मैं न करूँगा। केवल नामका ध्यान है, नहीं एकबार नहीं कर जाऊँ तो मेरा कोई क्या करेगा? और सच पूछो तो मुझे अपने नामकी कोई चिन्ता नहीं है। मुझे कौन जानता है। संसार तो भैयाको हँसेगा।

केदारका मुह सूख गया। चम्पा भी चकरा गयी। वह बड़ी चतुर वाक्यनिपुण रमणी थी। उसे माधव जैसे गँवारसे ऐसी दृढ़ताकी आशा न थी। उसकी ओर आदरसे देखकर बोली—लाल्ल, कभी-कभी तुम भी लड़कोंकीसी बातें करते हो। भला इस झोपड़ीपर कौन सौ रुपये निकालकर देगा? तुम सवा सौके बदले सौ ही दिलाओ, मैं आज ही अपना हिस्सा बेचती हूँ। उतना ही मेरा भी तो है। घरपर तो तुमको वही चार बीस मिलेंगे। हाँ, और रुपयोंका प्रबन्ध हम और आप कर देंगे। इज्जत हमारी तुम्हारी एक ही है, वह न जाने पायेगी। वह रुपया अलग खातेमें चढ़ा लिया जायगा।

माधवकी वांछायें पूरी हुईं। उसने मैदान मार लिया।

सोचने लगा, मुझे तो रुपयोंसे काम है, चाहे एक नहीं दस खाते में चढ़ा लो। रहा मकान, वह जीते जी नहीं छोड़नेका। प्रसन्न होकर चला। इसके जानेके बाद केदार और चम्पाने कपट भेष त्याग दिया और बड़ी देरतक एक दूसरेको इस कड़े सौदेका दोषी सिद्ध करनेकी चेष्टा करते रहे। अन्तमें मनको इस तरह सन्तोष दिया कि भोजन बहुत मधुर नहीं, किन्तु भर कटौत तो है। घर, हां देखेंगे कि श्यामा रानी इस घरमे कैसे राज करती है।

केदारके दरवाजेपर दो बैल खड़े हैं। इनमें कितनी संघशक्ति, कितनी मित्रता और कितना प्रेम है। दोनों एकही जुयेमें चलते हैं, बस इनमें इतना ही नाता है। किन्तु अभी कुछ दिन हुए जब इनमेंसे एक चम्पाके मैके मंगनी गया था तो दूसरेने तीन दिनतक नादमें मुँह नहीं डाला। परन्तु शोक, एक गोदके खेले भाई, एक छातीसे दूध पीनेवाले आज इतने बेगाने हो रहे हैं कि एक घरमें रहना भी नहीं चाहते।

[४]

प्रातःकाल था। केदारके द्वारपर गाँवके मुखिया और नंबरदार विराजमान थे। मुन्शी दातादयाल अभिमानसे चारपाईपर बैठे रेहनका मसविदा तैयार करनेमें लगे थे। बारम्बार कलम बनाते और बारम्बार खत रखते, पर खतकी शान न सुधरती थी। केदारका मुखारविन्द विकसित था और चम्पा फूली नहीं समाती थी। माधव कुम्हलाया और म्लान था।

मुखियाने कहा—भाई ऐसा हित, न भाई ऐसा शत्रु। केदारने छोटे भाईकी लाज रख ली।

नम्बरदारने अनुमोदन किया—भाई हो तो ऐसा हो।

मुख्तारने कहा—भाई, सपूतोंका यही काम है।

दातादयालने पूछा—रेहन लिखनेवालेका नाम?

बड़े भाई बोले—माधव वल्द शिवदत्त।

"और लिखानेवालेका?"

"केदार वल्द शिवदत्त।"

माधवने बड़े भाईकी ओर चकित होकर देखा। आँखें डबडबा आयीं। केदार उसकी ओर देख न सका। नम्बरदार मुखिया और मुख्तार भी विस्मित हुए। क्या केदार खुद ही रुपया दे रहा है? बातचीत तो किसी साहूकारकी थी। जब घरहीमें रुपया मौजूद है तो इस रेहननामेकी आवश्यकता ही क्या थी? भाई-भाईमें इतना अविश्वास! अरे, राम! राम! क्या माधव ८०) को भी महँगा है? और यदि दबा ही बैठता तो क्या रुपये पानीमें चले जाते?

सभीकी आँखें सैन द्वारा परस्पर बातें करने लगीं, मानो आश्चर्यकी अथाह नदीमें नौकायें डगमगाने लगीं।

श्यामा दरवाजेकी चौखटपर खड़ी थी। वह सदा केदारकी प्रतिष्ठा करती थी, परन्तु आज केवल लोकरीतिने उसे अपने जेठको आड़े हाथों लेनेसे रोका।

बूढ़ी अम्माने सुना तो सूखी नदी उमड़ आयी। उसने एक बार आकाशकी ओर देखा और माथा ठोक लिया।

तब उसे उस दिनका स्मरण हुआ जब ऐसा ही सुहावना सुनहरा प्रभात था और दो प्यारे-प्यारे बच्चे उसकी गोदमें बैठे हुए उछल-कूदकर दूध रोटी खाते थे। उस समय माताके नेत्रोंमें

कितना अभिमान था, हृदयमें कितनी उमङ्ग और कितना उत्साह !

परन्तु आज, आह ! आज नयनोंमें लज्जा है और हृदयमें शोक सन्ताप। उसने पृथ्वीकी ओर देखकर कातर स्वरमें कहा - हे नारायण ! क्या ऐसे पुत्रोंका मेरी ही कोखमें जन्म लेना था !

बेटीका धन--

[१*

बेतवा नदी दो ऊँचे करारोंके बीच इस तरह मुँह छिपाये हुए थी जैसे निर्बल हृदयोंमें साहस और उत्साहकी मध्यम ज्योति छिपी रहती है। इसके एक करारपर एक छोटा सा गाँव बसा है जो अपने भग्न जातीय चिह्नोंके लिये बहुत ही प्रसिद्ध है। जातीय गाथाओं और चिह्नोंपर मर मिटनेवाले लोग इस भग्न स्थानपर बड़े प्रेम और श्रद्धाके साथ आते और गाँवका बूढ़ा केवट सुक्खू चौधरी उन्हें उसकी परिक्रमा कराता और रानीके महल, राजाका दरबार और कुँअरके बैठकके मिटे हुए चिह्नोंको दिखाता। वह एक उच्छ्वास लेकर रुंधे हुए गलेसे कहता—"महाशय ! एक वह समय था कि केवटोंको मछलियोंके इनाममें अशर्फियाँ मिलती थीं। कहार महलमें झाड़ू देते हुए

अशर्फियाँ बटोर ले जाते थे। बेतवा नदी रोज बढ़कर महाराजके चरण छूने आती थी। यह प्रताप और यह तेज था, परन्तु आज इसकी यह दशा है।" इन सुन्दर उक्तियोंपर किसीका विश्वास जमाना चौधरीके वशकी बात न थी पर सुननेवाले उसकी सहृदयता तथा अनुरागके जरूर कायल हो जाते थे।

सुक्खू चौधरी उदार पुरुष थे, परन्तु जितना बड़ा मुंह था उतना बड़ा ग्रास न था। तीन लड़के, तीन बहुएं और कई पौत्र पौत्रियाँ थीं। लड़की केवल एक गंगाजली थी, जिसका अभीतक गौना नहीं हुआ था। चौधरीकी यह सबसे पिछली सन्तान थी। स्त्रीके मर जानेपर उसने इसको बकरीका दूध पिला-पिलाकर पाला था। परिवारमें खानेवाले तो इतने थे, पर खेती सिर्फ एक हलकी होती थी। ज्यों-त्यों कर निर्वाह होता था, परन्तु सुक्खूकी वृद्धावस्था और पुरातत्व-ज्ञानने उसे गाँवमें वह मान और प्रतिष्ठा प्रदान कर रखी थी जिसे देखकर झगड़ू साहु भीतर ही-भीतर जलते थे। सुक्खू जब गाँववालोंके समक्ष हाकिमोंसे हाथ फेंक-फेंककर बातें करने लगता और खण्डहरोंको घुमा-फिराकर दिखाने लगता था तो झगड़ू साहु, जो चपरासियोंके धक्के खानेके डरसे करीब नहीं फटकते थे, तड़प-तड़पकर रह जाते थे। अतः वे सदा उस शुभ अवसरकी प्रतीक्षा करते रहते थे जब सुक्खूपर अपने धन द्वारा प्रभुत्व जमा सकें।

[२]

इस गाँवके जमींदार ठाकुर जीनतसिंह थे, जिनकी बेगारके मारे गाँववालोंके नाकोंदम था। उस साल जब जिला मजिस्ट्रेट

का दौरा हुआ और वह यहाँके पुरातन चिह्नोंकी सैर करनेके लिये पधारे, तो सुक्खू चौधरीने दबी जबानसे अपने गाँववालोंकी दुःख कहानी उन्हें सुनायी। हाकिमोंसे वार्त्तालाप करनेमें उसे तनिक भी भय न होता था। सुक्खू चौधरीको खूब मालूम था कि जीतनसिंहसे रार मचाना सिंहके मुंहमें सिर देना है। किन्तु जब गाँववाले कहते थे कि चौधरी तुम्हारी ऐसे-ऐसे हाकिमोंसे मिताई है और हम लोगोंको रातदिन रोते कटता है तो फिर तुम्हारी यह मित्रता किस दिन काम आवेगी। "परोपकाराय सताम् विभूतयः।" तब सुक्खूका मिजाज आसमानपर चढ़ जाता था। घड़ी भरके लिये वह जीतनसिंहको भूल जाता था। मजिस्ट्रेट-ने जीतनसिंहसे इसका उत्तर माँगा। उधर झगड़ू साहुने चौधरीके इस साहसपूर्ण स्वामीद्रोहकी रिपोर्ट जीतनसिंह को दी। ठाकुर साहब जलकर आग हो गये। अपने कारिन्देसे बकाया लगानकी बही मांगी। संयोगवश चौधरीके जिम्मे इस सालका कुछ लगान बाकी था। कुछ तो पैदावार कम हुई, उसपर गंगाजलीका व्याह करना पड़ा। छोटी बहू नथकी रट लगाये हुए थी, वह बनवानी पड़ी। इन सब खर्चोंने हाथ बिलकुल खाली कर दिया था। लगानके लिये कुछ अधिक चिन्ता नहीं थी। वह इस अभिमानमें भूला हुआ था कि जिस जबानमें हाकिमोंके प्रसन्न करनेकी शक्ति है क्या वह ठाकुर साहबको अपना लक्ष्य न बना सकेगी? बूढ़े चौधरी इधर तो अपने गर्वमें निश्चिन्त थे और उधर उनपर बकाया लगानकी नालिश ठुक गयी। सम्मन आ पहुँचा। दूसरे दिन पेशीकी तारीख पड़ गयी। चौधरीको अपना जादू चलानेका अवसर न मिला।

जिन लोगोंके बढ़ावेमें आकर सुक्खूने ठाकुरसे छेड़छाड़ की थी उनका दर्शन मिलना दुर्लभ हो गया। ठाकुर साहबके सहने और प्यादे गाँवमें चीलकी तरह मँड़राने लगे। उनके भयसे किसीको चौधरीकी परछाहीं काटनेका साहस न होता था। कचहरी यहाँसे तीन मीलपर थी। बरसातके दिन, रास्तेमें ठौर-ठौर पानी और उमड़ी हुई नदियाँ, रास्ता कच्चा, बैलगाड़ीका निबाह नहीं, पैरोंमें बल नहीं, अतः अदमपैरवीमें मुकदमा एक तरह फैसल हो गया।

[२]

कुर्कीका नोटिस पहुँचा तो चौधरीके हाथ-पाँव फूल गये। सारी चतुराई भूल गयी। चुपचाप अपनी खाटपर पड़ा-पड़ा नदीकी ओर ताकता और मनमें कहता—क्या मेरे जीते-ही-जी घर मिट्टीमें मिल जायगा। मेरे इन बैलोंकी सुन्दर जोड़ीके गलेमें आह! क्या दूसरोंका जुआ पड़ेगा? यह सोचते-सोचते उसकी आँखें भर आतीं। वह बैलोंसे लिपटकर रोने लगता, परन्तु बैलोंकी आँखोंसे क्यों आँसू जारी थे? वे नांदमें मुँह क्यों नहीं डालते? क्या उनके हृदयपर भी अपने स्वामीके दुःखकी चोट पहुँच रही थी?

फिर वह अपने झोपड़ेको विकल नयनोंसे निहारकर देखता और मनमें सोचता—क्या हमको इस घरसे निकलना पड़ेगा? यह पूर्वजोंकी निशानी क्या हमारे जीते जी छिन जायगी?

कुछ लोग परीक्षामें दृढ़ रहते हैं और कुछ लोग इसकी हल्की आँच भी नहीं सह सकते। चौधरी अपनी खाटपर उदास पड़े-

पड़े घण्टों अपने कुलदेव महावीर और महादेवको मनाता और उनका गुण गाया करता। उसकी चिन्तादग्ध आत्माको और कोई सहारा न था।

इसमें कोई सन्देह न था कि चौधरीकी तीनों बहुओंके पास गहने थे, पर स्त्रीका गहना ऊखका रस है, जो पेरने हीसे निकलता है। चौधरी जातिका ओछा पर स्वभावका ऊँचा था। उसे ऐसी नीच बात बहुओंसे कहते संकोच होता था, कदाचित् यह नीच विचार उसके हृदयमें उत्पन्न ही नहीं हुआ था, किन्तु तीनों बेटे यदि जरा भी बुद्धिसे काम लेते तो बूढ़ेको देवताओंकी शरण लेनेकी आवश्यकता न होती। परन्तु यहाँ तो बात ही निराली थी। बड़े लड़केको घाटके कामसे फुरसत न थी। बाकी दो लड़के इस जटिल प्रश्नको विचित्र रूपसे हल करनेके मंसूबे बाँध रहे थे।

मझले झींगुरने मुँह बनाकर कहा—ऊँह! इस गाँवमें क्या धरा है। जहाँ ही कमाऊँगा वहीं खाऊँगा। पर जीतनसिंहकी मूँछें एक एक करके चुन लूँगा।

छोटे फक्कड़ ऐंठकर बोले—मूँछें तुम चुन लेना। नाक मैं उड़ा दूँगा। नककटा बना घूमेगा।

इसपर दोनों खूब हँसे और मछली मारने चल दिये।

इस गाँवमें एक बूढ़े ब्राह्मण भी रहते थे। मन्दिरमें पूजा करते और नित्य अपने यजमानोंको दर्शन देने नदी पार जाते, पर खेवेके पैसे न देते। तीसरे दिन वह जमींदारके गुप्तचरोंकी आँख बचाकर सुक्खूके पास आये और सहानुभूतिके स्वरमें बोले—चौधरी! कल ही तक मियाद है और तुम अभीतक पड़े-पड़े सो

रहे हो। क्यों नहीं घरकी चीज वस्तु ढूँढ-ढाढ़कर किसी और जगह भेज देते? न हो समधियाने पठवा दो। जो कुछ बच रहे वही सही। घरकी मिट्टी खोदकर थोड़े ही कोई ले जायगा।

चौधरी लेटा था, उठ बैठा और आकाशकी ओर निहार कर बोला—जो कुछ उसकी इच्छा है होगा। मुझसे यह जाल न होगा।

इधर कई दिनकी निरन्तर भक्ति और उपासनाके कारण चौधरीका मन शुद्ध और पवित्र हो गया था। उसे छल-प्रपंचसे घृणा उत्पन्न हो गयी थी। पण्डितजी इस काममें सिद्धहस्त थे, लज्जित हो गये।

परन्तु चौधरीके घरके अन्य लोगोंको ईश्वरेच्छापर इतना भरोसा न था। धीरे धीरे घरके बर्तन-भाँड़े खिसकाये जाते थे। अनाजका एक दाना भी घरमें न रहने पाया। रातको नाव लदी हुई जाती और उधरसे खाली लौटती थी। तीन दिन तक घरमें चूल्हा न जला। बूढ़े चौधरीके मुँहमें अन्नकी कौन कहे पानीकी एक बूँद भी न पड़ी। स्त्रियाँ भाड़से चने भुनाकर चबातीं और लड़के मछलियाँ भून-भूनकर उड़ाते, परन्तु बूढ़ेकी इस एकादशीमें यदि कोई शरीक था तो वह उसकी बेटी गङ्गाजली थी। वह बेचारी अपने बूढ़े बापको चारपाईपर निर्जल छटपटाते देख बिलख-बिलखकर रोती।

लड़कोंको अपने माता-पितासे वह प्रेम नहीं होता जो लड़कियोंको होता है। गंगाजली इस सोच-विचारमें मग्न रहती कि दादाकी किस भाँति सहायता करूँ। यदि हम सब भाई-बहन मिलकर जीतनसिंहके पास जाकर दयाभिक्षाकी प्रार्थना करें तो वे अवश्य

मान जायँगे, परन्तु दादाको कब यह स्वीकार होगा। वह यदि एक दिन बड़े साहबके पास चले जायँ तो सब कुछ बात-की-बातमें बन जाय। किन्तु उनकी तो जैसे बुद्धि ही मारी गयी है। इसी उधेड़-बुनमें उसे एक उपाय सूझ पड़ा, कुम्हलाया हुआ मुखारविन्द खिल उठा।

पुजारीजी सुक्खू चौधरीके पाससे उठकर चले गये थे और चौधरी उच्च स्वरसे अपने सोये हुए देवताओंको पुकार-पुकारकर बुला रहे थे। निदान गङ्गाजली उनके पास जाकर खड़ी हो गयी। चौधरीने उसे देखकर विस्मित स्वरमें पूछा — क्या बेटी! इतनी रात गये क्यों बाहर आयी?

गङ्गाजलीने कहा—बाहर रहना तो भाग्यमें लिखा है, घरमें कैसे रहूँ।

सुक्खूने जोरसे हांक लगाई—कहाँ गये तुम कृष्ण मुरारी, मेरे दुःख हरो।

गंगाजली खड़ी थी, बैठ गयी और धीरेसे बोली—भजन गाते तो आज तीन दिन हो गये। घर बचानेका कुछ उपाय सोचा कि इसे यों ही मिट्टीमें मिला दोगे? हम लोगोंको क्या पेड़ तले रखोगे?

चौधरीने व्यथित स्वरसे कहा—बेटी! मुझे तो कोई उपाय नहीं सूझता। भगवान जो चाहेंगे होगा। बेग चलो गिरधर गोपाला, काहे विलम्ब करो।

गंगाजलीने कहा—मैंने एक उपाय सोचा है, कहो तो कहूं।

चौधरी उठकर बैठ गये और पूछा —कौन उपाय है बेटी?

गंगाजलीने कहा—मेरे गहने झगड़ू साहुके यहाँ गिरों रख

दो। मैंने जोड़ लिया है। देने भरके रुपये हो जायँगे।

चौधरीने ठण्ढो सांस लेकर कहा—बेटी! तुमको मुझसे यह बात कहते लाज नहीं आती। वेद-शास्त्रमें मुझे तुम्हारे गाँवके कुएका पानी पीना भी मना है। तुम्हारी ड्योढ़ीमें पैर रखनेका निषेध है। क्या तुम मुझे नरकमें ढकेलना चाहती हो?

गङ्गाजली उत्तरके लिये पहले हीसे तैयार थी, बोली—मैं अपने गहने तुम्हें दिये थोड़े ही देती हूँ। इस समय लेकर काम चलाओ चैतमें छुड़ा देना।

चौधरीने कड़ककर कहा—यह मुझसे न होगा।

गंगाजली उत्तेजित होकर बोली—तुमसे यह न होगा तो मैं आप ही जाऊँगी, मुझसे घरकी यह दुर्दशा नहीं देखी जाती।

चौधरीने झुंझलाकर कहा—बिरादरीमें कौन मुँह दिखाऊँगा?

गगाजलीने चिढ़कर कहा—बिरादरीमें कौन ढिंढोरा पीटने जाता है।

चौधरीने फैसला सुनाया—जग हँसाईके लिये मैं अपना धर्म्म न बिगाड़ूगा।

गंगाजली बिगड़कर बोली—मेरी बात नहीं मानोगे तो तुम्हारे ऊपर मेरी हत्या पड़ेगी। मैं आज ही इस बेतवा नदीमें कूद पड़ूँगी। तुमसे चाहे घरमें आग लगाते देखा जाय, पर मुझसे न देखा जायगा।

चौधरीने ठण्ढी सांस लेकर कातर स्वरमें कहा—बेटी, मेरा धर्म नाश मत करो। यदि ऐसा ही है तो अपनी किसी भावजके गहने माँगकर लाओ।

गंगाजलीने गम्भीर भावसे कहा—भावजोंसे कौन अपना

मुँह नोचवाने जायगा, उनको फिकर होती तो क्या मुँहमें दही जमा था, कहतीं नहीं ?

चौधरी निरुत्तर हो गये। गंगाजली घरमें जाकर गहनोंकी पिटारी लायी और एक-एक करके सब गहने चौधरीके अंगोछेमें बाँध दिये। चौधरीने आँखोंमें आँसू भरकर कहा—हाय राम ! इस शरीरकी क्या गति लिखी है। यह कहकर उठे। बहुत सम्हालनेपर भी आँखोंमें आँसू न छिपे।

[४]

रातका समय था। बेतवा नदीके किनारे-किनारे मार्गको छोड़कर सुक्खू चौधरी गहनोंकी गठरी कांखमें दबाये इस तरह चुपके-चुपके चल रहे थे, मानों पापकी गठरी लिये जाते हैं। जब वह झगड़ू साहुके मकानके पास पहुँचे तो ठहर गये, आँखें खूब साफ कीं, जिसमें किसीको यह बोध न हो कि चौधरी रोता था।

झगड़ू साहु धागेकी कमानीकी एक मोटी ऐनक लगाये बही-खाता फैलाये हुक्का पी रहे थे और दीपकके धुँधले प्रकाशमें उन अक्षरोंके पढ़नेकी व्यर्थ चेष्टामें लगे थे जिनमें स्याहीकी बहुत किफायत की गई थी। बार-बार ऐनकको साफ करते और आँख मलते, पर चिरागकी बत्ती उसकाना या दोहरी बत्ती लगाना शायद इसलिये उचित नहीं समझते थे कि तेलका अपव्यय होगा। इसी समय सुक्खू चौधरीने आकर कहा—जै रामजी !

झगड़ू साहुने देखा। पहचानकर बोले—जय राम चौधरी ! कहो, मुकद्दमेमें क्या हुआ ? यह लेन-देन बड़े झंझटका काम है। दिनभर सिर उठानेकी छुट्टी नहीं मिलती।

चौधरीने पोटलीको खूब सावधानीने छिपाकर लापरवाहीके साथ कहा—अभीतक तो कुछ नहीं हुआ। कल्ह इजराय डिगरी होनेवाली है। ठाकुर साहबने न जाने कबका बैर निकाला है। हमको दो-तीन दिनकी भी मुहलत होती तो डिगरी न जारी होने पाती। छोटे साहब और बड़े साहब दोनों हमको अच्छी तरह जानते हैं। अभी इसी साल मैने उनसे नदी किनारे घण्टों बातें कीं। किन्तु एक तो बरसातके दिन, दूसरे एक दिनकी भी मुहलत नहीं, क्या करता। इस समय मुझे रुपयोंकी चिन्ता है।

झगड़ू साहुने विस्मित होकर पूछा—"तुमको रुपयोंकी चिन्ता! घरमें भरा है वह किस दिन काम आवेगा।" झगड़ू-साहुने यह व्यंग्यबाण नहीं छोड़ा था। वास्तवमें उन्हें और सारे गाँवको विश्वास था कि चौधरीके घरमें लक्ष्मी महारानीका आखण्ड राज्य है।

चौधरीका रंग बदलने लगा। बोले—साहुजी! रुपया होता तो किस बातकी चिन्ता थी? तुमसे कौन छिपाव है? आज तीन दिनसे घरमें चूल्हा नहीं जला, रोना पीटना पड़ा है। अब तो तुम्हारे बसाये बसूँगा। ठाकुर साहबने तो उजाड़नेमें कोई कसर न छोड़ी।

झगड़ू साहु जीतनसिंहको खुश रखना जरूर चाहते थे, पर साथ ही चौधरीको भी नाखुश करना मञ्जूर न था। यदि सूद दर सूद जोड़कर मूल तथा ब्याज सहजमें वसूल हो जाय तो उन्हें चौधरीपर मुफ्तका एहसान लादनेमें कोई आपत्ति न थी। यदि चौधरीके अफसरोंकी जान-पहिचानके कारण साहुजीका टैक्ससे गला छूट जाय, जो अनेकों उपाय करने, अहलकारोंकी मुट्ठी

गरम करनेपर भी नित्य प्रति उनकी तोंदकी तरह बढ़ता ही जा रहा था तो क्या पूछना ! बोले—क्या कहें चौधरीजी, खर्चके मारे आजकल हम भी तबाह हैं। लेहने वसूल नहीं होते। टैक्सका रुपया देना पड़ा। हाथ बिल्कुल खाली हो गया। तुम्हें कितना रुपया चाहिये ?

चौधरीने कहा—सौ रुपयेकी डिगरी है खर्च बर्च मिलाकर दो सौके लगभग समझो।

झगड़ू अब अपने दाँव खेलने लगे। पूछा—तुम्हारे लड़कों-ने तुम्हारी कुछ भी मदद न की। यह सब भी तो कुछ-न-कुछ कमाते ही हैं ?

साहुजीका यह निशाना ठीक पड़ा। लड़कोंकी लापरवाहीसे चौधरीके मनमें जो कुत्सित भाव भरे थे, वह सजीव हो गये। बोला—भाई, लड़के किसी कामके होते तो यह दिन ही क्यों देखना पड़ता। उन्हें तो अपने भोग-विलाससे मतलब। घर गृहस्तीका बोझ तो मेरे सिरपर है। मैं इसे जैसे चाहूँ सँभालूँ। उनसे कुछ सरोकार नहीं, मरते दम भी गला नहीं छूटता। मरूँगा तो सब खालमें भूसा भराकर रख छोड़ेंगे। "गृह कारज नाना जंजाला।"

झगड़ूने दूसरी तीर मारी—क्या बहुओंसे भी कुछ न बन पड़ा।

चौधरीने उत्तर दिया—बहू बेटे सब अपनी-अपनी मौजमें मस्त हैं। मैं तीन दिनतक द्वारपर बिना अन्न जलके पड़ा था, किसीने बात भी नहीं पूछी। कहाँकी सलाह कहाँकी बातचीत। बहुओंके पास रुपये न हों, पर गहने तो हैं और वे भी मेरे बन

वाये हुए। इस दुर्दिनके समय यदि दो-दो थान उतार देतीं तो क्या मैं छुड़ा न देता ? सदा यही दिन थोड़े ही रहेंगे।

झगड़ू समझ गये कि यह महज जबानका सौदा है और वह जबानका सौदा भूलकर भी न करते थे। बोले—तुम्हारे घरके लोग भी अनूठे हैं। क्या इतना भी नहीं जानते कि बूढ़ा रुपये कहाँसे लावेगा ? अब समय बदल गया। या तो कुछ जायदाद लिखो या गहने गिरों रक्खो, तब जाकर कहीं रुपया मिले। इसके बिना रुपये कहाँ। इसमें भी जायदादमें सैकड़ों बखेड़े पड़े हैं। सुभीता गिरों रखनेमें ही है। हाँ, तो जब घरवालोंको कोई इसकी फिक्र नहीं तो तुम क्यों व्यर्थ जान देते हो। यही न होगा कि लोग हँसेंगे। यह लाज कहाँतक निबाहोगे ?

चौधरीने अत्यन्त विनीत होकर कहा—साहु जी यही लाज तो मारे डालती है। तुमसे क्या छिपा है ? एक वह दिन था कि हमारे दादा बाबा महाराजकी सवारीके साथ चलते थे और अब एक दिन यह है कि घरकी दीवारतक बिकनेको नौबत आ गयी है। कहीं मुँह दिखानेको भी जी नहीं चाहता। यह लो गहनोंकी पोटली। यदि लोकलाज न होती तो इसे लेकर कभी यहाँ न आता। परन्तु यह अधर्म इसी लाज निबाहनेके कारण करना पड़ा है।

झगड़ू साहुने आश्चर्यमें होकर पूछा—यह गहने किसके हैं ?

चौधरीने सिर झुकाकर बड़ी कठिनतासे कहा—मेरी बेटी गंगाजलीके।

झगड़ू साहु स्तम्भित हो गये। बोले—अरे! राम राम।

चौधरीने कातर स्वरमें कहा—डूब मरनेको जी चाहता है।

झगड़ूने बड़ी धार्मिकताके साथ स्थिर होकर कहा—शास्त्रमें बेटीके गाँवका पेड़ देखना मना है।

चौधरीने दीर्घ निःश्वास छोड़कर करुण स्वरमें कहा—न जाने नारायण कब मौत देंगे। भाईजी! तीन लड़कियाँ व्याहीं। कभी भूलकर भी उनके द्वारका मुँह नहीं देखा। परमात्माने अबतक तो टेक निबाही है, पर अब न जाने मिट्टीकी क्या दुर्दशा होनेवाली है।

झगड़ू साहु 'लेखा जौ जौ, बखशीश सौ सौ' के सिद्धान्त पर चलते थे। सूदकी एक कौड़ी भी छोड़ना उनके लिये हराम था। यदि महीनेका एक दिन भी लग जाता तो पूरे महीनेका सूद वसूल कर लेते। परन्तु नवरात्रमें नित्य दुर्गापाठ करवाते थे। पितृपक्षमें रोज ब्राह्मणोंको सीधा बाँटते थे। बनियोंकी धर्ममें बड़ी निष्ठा होती है। झगड़ू साहुके द्वारपर सालमें एक बार भागवत पाठ अवश्य होता। यदि कोई दीन ब्राह्मण लड़की व्याहनेके लिये उनके सामने हाथ पसारता तो वह खाली हाथ न लौटता, भीख माँगनेवाले ब्राह्मणोंको चाहे वह कितने ही सण्डे मुसण्डे हों, उनके दरवाजेपर फटकार नहीं सुननी पड़ती थी। उनके धर्मशास्त्रमें कन्याके गाँवके कुएँका पानी पीनेसे प्यासा मर जाना अच्छा था। वह स्वयं इस सिद्धान्तके भक्त थे और इस सिद्धान्तके अन्य पक्षपाती उनके लिये महामान्य देवता थे। वे पिघल गये, मनमें सोचा, यह मनुष्य तो कभी अच्छे विचारोंको मनमें नहीं लाया। निर्दयकालकी ठोकरसे अधर्म मार्गपर उतर आया है तो उसके धर्मकी रक्षा करना हमारा कर्तव्यधर्म है। यह विचार मनमें आते ही झगड़ू साहु गद्दीसे मसनदके

सहारे उठ बैठे और दृढ़ स्वरसे कहा—वही परमात्मा जिसने अबतक तुम्हारी टेक निबाही है, अब भी निबाहेगा। लडकीके गहने लड़कीको दे दो। लड़की जैसी तुम्हारी है वैसी ही मेरी भी है। यह लो रुपये आज काम चलाओ। जब हाथमें रुपये आ जायँ दे देना।

चौधरीपर इस सहानुभूतिका गहरा असर पडा। वह जोर-जोरसे रोने लगा। उसे अपने भावोंकी धुनमें कृष्ण भगवानकी मोहिनी मूर्ति सामने विराजमान दिखायी दी। वही झगडू जो सारे गाँवमें बदनाम था, जिसकी उसने खुद कई बार हाकिमोंसे शिकायत की थी, आज साक्षात देवता जान पड़ता था। रुँधे हुए कण्ठसे गद्‌गद् हो बोला—झगडू! तुमने इस समय मेरी बात, मेरी लाज, मेरा धर्म कहाँतक कहूँ मेरा सब कुछ रख लिया। मेरी डूबती नाव पार लगा दी। कृष्ण मुरारी तुम्हारे इस उपकारका फल देंगे और मै तो तुम्हारा गुण जबतक जीऊँगा गाता रहूँगा।

धर्म-संकट—

[१]

"पुरुषों और स्त्रियोंमें बड़ा अन्तर है, तुम लोगोंका हृदय शीशेकी तरह कठोर होता है और हमारा हृदय नरम, वह विरहकी आँच नहीं सह सकता।"

"शीशा ठेस लगते ही टूट जाता है। नरम वस्तुओंमें लचक होती है।"

"चलो, बातें न बनाओ। दिनभर तुम्हारी राह देखूँ, रात-भर घड़ीकी सूइयाँ, तब कहीं आपके दर्शन होते हैं।"

"मैं तो सदैव तुम्हें अपने हृदय-मन्दिरमें छिपाए रखता हूँ।"

"ठीक बतलाओ कब आओगे?"

"ग्यारह बजे, परन्तु पिछला दरवाजा खुला रखना।"

"उसे मेरे नयन समझो।"

"अच्छा तो अब बिदा।"

[२]

पण्डित कैलासनाथ लखनऊके प्रतिष्ठित बैरिष्टरोंमेंसे थे। कई सभाओंके मन्त्री, कई समितियोंके सभापति, पत्रोंमें अच्छे-अच्छे लेख लिखते, प्लेटफार्मपर सारगर्भित व्याख्यान देते. पहले पहल जब वह यूरोपसे लौटे थे तो यह उत्साह अपनी पूरी उमंगपर था परन्तु ज्यों-ज्यों बैरिस्टरी चमकने लगी; इस

उत्साहमें कमी आने लगी और यह ठीक भी था, क्योंकि अब बेकार न थे जो बेगार करते। हाँ, क्रिकेटका शौक अबतक ज्यों-का-त्यों बना था। वह कैसरक्लबके संस्थापक और क्रिकेटके प्रसिद्ध खिलाड़ी थे।

यदि मि० कैलासको क्रिकेटकी धुन थी तो उनकी बहन कामिनीको टेनिसका शौक था। इन्हें नित नवीन आमोद-प्रमोद की चाह रहती थी। शहरमें कहीं नाटक हो, कोई थियेटर आवे, कोई सरकस, कोई बायसकोप हो, कामिनी उसमें न सम्मिलित हो, यह असम्भव बात थी। मनोविनोदकी कोई भी सामग्री उसके लिये उतनी ही आवश्यक थी, जितना वायु और प्रकाश।

मि० कैलाश पश्चिमीय सभ्यताके प्रवाहमें बहनेवाले अपने अन्य सहयोगियोंकी भांति हिन्दू जाति, हिन्दू सभ्यता, हिन्दी भाषा और हिन्दुस्तानके कट्टर विरोधी थे। हिन्दू सभ्यता, उन्हें दोषपूर्ण दिखायी देती थी। अपने इन विचारोंको वे अपनेहीतक परिमित न रखते थे, बल्कि बड़ी ही ओजस्विनी भाषामें इन विषयोंपर लिखते और बोलते थे। हिन्दू सभ्यताके विवेकी भक्त उनके इन विवेकशून्य विचारोंपर हँसते थे परन्तु उपहास और विरोध तो सुधारकके पुरस्कार हैं। मि० कैलाश उनकी कुछ परवाह न करते थे। वे कोरे वाक्यवीर ही न थे, कर्मवीर भी पूरे थे। कामिनीकी स्वतन्त्रता उनके विचारोंका प्रत्यक्ष स्वरूप थी। सौभाग्यवश कामिनीके पति गोपालनारायण भी इन्हीं विचारोंमें रंगे हुए थे। वे सालभरसे अमेरिकामें विद्याध्ययन करते थे। कामिनी, भाई और पतिके उपदेशोंसे पूरा-पूरा लाभ उठानेमें कमी न करती थी।

[३]

लखनऊमें अलफ्रेड थियेटर कम्पनी आयी हुई थी। शहरमें जहाँ देखिये उसीके तमाशेकी चर्चा थी। कामिनीकी रातें बड़े आनन्दसे कटती थीं। रातभर थियेटर देखती, दिनको कुछ सोती और कुछ देर वही थियेटरके गीत अलापती। सौन्दर्य और प्रीतिके नवरमणीय संसारमें रमण करती थी, जहाँका दुःख और क्लेश भी इस संसारके सुख और आनन्दसे बढ़कर मोद-दायी है। यहाँ तक कि तीन महीने बीत गये। प्रणयकी नित्य नयी मनोहर शिक्षा और प्रेमके आनन्दमय आलाप-विलापका हृदयपर कुछ-न-कुछ असर होना ही चाहिये था। सो भी इस चढ़ती जवानीमें। वह असर हुआ। इसकी श्रीगणेश उसी तरह हुआ जैसा कि बहुधा हुआ करता है।

थियेटर हालमें एक सुघर सजीले युवककी आँखें कामिनीकी ओर उठने लगीं। वह रूपवती और चञ्चला थी, अतएव पहिले उसे चितवनमें किसी रहस्यका ज्ञान न हुआ। नेत्रोंको सुन्दरतासे बड़ा घना सम्बन्ध है। घूरना पुरुषका और लजाना स्त्रीका स्वभाव है। कुछ दिनोंके बाद कामिनीको इस चितवनमें कुछ गुप्त भाव झलकने लगे। मन्त्र अपना काम करने लगा। फिर नयनोंमें परस्पर बातें होने लगीं। नयन मिल गये। प्रीति गाढ़ी हो गयी। कामिनी एक दिनके लिए भी यदि किसी दूसरे उत्सवमें चली जाती तो वहाँ उसका मन न लगता। जी उचटने लगता। आँखें किसीको ढूँढ़ा करतीं।

अन्तमें लज्जाका बाँध टूट गया। हृदयके विचार स्वरूपवान

हुए। मौनका ताला टूटा। प्रेमालाप होने लगा। पद्यके बाद गद्यकी बारी आयी और फिर दोनों मिलन-मन्दिरके द्वारपर आ पहुँचे। इसके पश्चात् जो कुछ हुआ उसकी झलक हम पहले ही देख चुके हैं।

[४]

इस नवयुवकका नाम रूपचन्द था। पंजाबका रहनेवाला, संस्कृतका शास्त्री, हिन्दी-साहित्यका पूर्ण पण्डित, अङ्गरेजीका एम० ए०, लखनऊके एक बड़े लोहेके कारखानेका मैनेजर था। घरमें रूपवती स्त्री, दो प्यारे बच्चे थे। अपने साथियोंमें सदाचरणके लिये प्रसिद्ध था। न जवानीकी उमंग, न स्वभावका छिछोरापन। भर-गृहस्थीमें जकड़ा हुआ था। मालूम नहीं वह कौनसा आकर्षण था, जिसने उसे इस तिलस्ममें फँसा लिया, जहाँकी भूमि अग्नि और आकाश ज्वाला है, जहाँ घृणा और पाप है और अभागी कामिनीको क्या कहा जाय जिसकी प्रीतिकी बाढ़ने धीरता और विवेकका बांध तोड़कर अपनी तरल तरंगमें नीति और मर्यादाकी टूटी-फूटी झोपड़ीको डुबो दिया। यह पूर्वजन्मके संस्कार थे।

रातके दस बज गये थे। कामिनी लैम्पके सामने बैठी हुई चिट्ठियाँ लिख रही थी। पहला पत्र रूपचन्दके नाम था।

कैलाश भवन, लखनऊ,

प्राणाधार !

तुम्हारे पत्रको पढ़कर प्राण निकल गये। उफ! अभी एक महीना लगेगा। इतने दिनोंमें कदाचित् तुम्हें यहाँ मेरी राख भी

न मिलेगी। तुमसे अपने दुःख क्या रोऊँ। बनावटके दोषारोपणसे डरती हूँ। जो कुछ बीत रही है वह मैं ही जानती हूँ। लेकिन बिना विरह कथा सुनाए दिलकी जलन कैसे जायगी? यह आग कैसे ठण्डी होगी? अब मुझे मालूम हुआ कि यदि प्रेम दहकती हुई आग है तो वियोग उसके लिये घृत है। थियेटर अब भी जाती हूँ, पर विनोदके लिये नहीं, रोने और विसूरनेके लिये, रोनेमें ही चित्तको कुछ शान्ति मिलती है, आँसू उमड़े चले आते हैं। मेरा जीवन शुष्क और नीरस हो गया है। न किसीसे मिलनेको जी चाहता है न आमोद-प्रमोदमें मन लगता है। परसों डाक्टर केलकरका व्याख्यान था, भाई साहबने बहुत आग्रह किया, पर मैं न जा सकी। प्यारे! मौतसे पहले मत मारो। आनन्दके इन गिने-गिनाये क्षणोंमें वियोगका दुःख मत दो। आओ, यथासाध्य शीघ्र आओ, और गलेसे लगकर मेरे हृदयकी ताप बुझाओ। अन्यथा आश्चर्य नहीं कि विरहका यह अथाह सागर मुझे निगल जाय।

तुम्हारी—कामिनी

इसके बाद कामिनीने दूसरा पत्र पतिको लिखा।

माई डियर गोपाल!

अब तक तुम्हारे दो पत्र आये। परन्तु खेद, मैं उनका उत्तर न दे सकी। दो सप्ताहसे सिरकी पीड़ासे असह्य वेदना सह रही हूँ। किसी भाँति चित्तको शान्ति नहीं मिलती। पर अब कुछ स्वस्थ हूँ। कुछ चिन्ता मत करना। तुमने जो नाटक भेजे उनके लिये मैं हार्दिक धन्यवाद देती हूँ, स्वस्थ हो जानेपर पढ़ना

आरम्भ करूँगी। तुम वहांके मनोहर दृश्योंका वर्णन मत किया करो। मुझे तुमपर ईर्ष्या होती है। यदि मैं आग्रह करूँ तो भाई साहब वहाँतक पहुँचा तो देंगे, परन्तु इनके खर्च इतने अधिक हैं कि इनमे नियमित रूपसे साहाय्य मिलना कठिन है और इस समय तुमपर भार देना भी कठिन है, ईश्वर चाहेगा तो वह दिन शीघ्र देखनेमें आवेगा जब मैं तुम्हारे साथ आनन्दपूर्वक वहाँकी सैर करूँगी। मैं इस समय तुम्हें कोई कष्ट तो नहीं देना चाहती पर अपनी आवश्यकताएँ किससे कहूँ। मेरे पास अब कोई अच्छा गाउन नहीं रहा। किसी उत्सवमें जाते लजाती हूँ। यदि तुमसे हो सके तो मेरे लिये एक अपने पसन्दका गाउन बनवा कर भेज दो। आवश्यकता तो और भी कई चीजोंकी है परन्तु इस समय तुम्हें अधिक कष्ट देना नहीं चाहती। आशा है, तुम सकुशल होगे।

तुम्हारी—
कामिनी

[५]

लखनऊके सेशन जजके इजलाशमें बड़ी भीड़ थी। अदालतके कमरे ठसाटस भर गये थे। तिल रखनेकी जगह न थी। सबकी दृष्टि बड़ी उत्सुकताके साथ जजके सम्मुख खड़ी एक सुन्दर लावण्यमयी मूर्त्तिपर लगी हुई थी। यह कामिनी थी। उसका मुँह धूमिल हो रहा था। ललाटपर स्वेत-विन्दु झलक रहे थे। कमरेमें घोर निस्तब्धता थी। केवल वकीलोंकी कानाफूसी और सैन कभी-कभी इस निस्तब्धताको भंग कर देती थी।

अदालतका हाता आदमियोंसे इस तरह भर गया था कि जान पड़ता था मानो सारा शहर सिमिटकर यहीं आ गया है। था भी ऐसा ही। शहरकी प्रायः दूकानें बन्द थीं और जो एक आध खुली भी थीं उनपर लड़के बैठे ताश खेल रहे थे, क्योंकि कोई गाहक न था। शहरसे कचहरियोंतक आदमियोंका तांता लगा हुआ था। कामिनीको निमिषमात्र देखनेके लिये, उसके मुँहसे एक बात सुननेके लिये, इस समय प्रत्येक आदमी अपना सर्वस्व निछावर करनेपर तैयार था। वे लोग जो कभी पण्डित दाता दयाल शर्मा जैसे प्रभावशाली वक्ताकी वक्तृता सुननेके लिये घरसे बाहर नहीं निकले, वे जिन्होंने नवजवान मनचले बेटोंको अलफ्रेड थियेटरमें जानेकी आज्ञा नहीं दी, वे एकान्त-प्रिय जिन्हें वायसरायके शुभागमन तककी खबर न हुई थी, वे शान्तिके उपासक जो मुहर्रमकी चहलपहल देखनेको अपनी कुटियासे बाहर न निकलते थे, वे सभी आज गिरते पड़ते, उठते बैठते, कचहरीकी ओर दौड़े चले जा रहे थे। बेचारी स्त्रियां अपने भाग्यको कोसती हुई अपनी-अपनी अटारियोंपर चढ़कर विव-शतापूर्ण उत्सुक दृष्टिसे उस तरफ ताक रही थीं जिधर उनके विचारमें कचहरी थी। पर उनकी गरीब आंखें निर्दय अट्टालि-काओंकी दीवारोंसे टकराकर लौट आती थीं। यह सब कुछ इस-लिये हो रहा था कि आज अदालतमें एक बड़ा मनोहर अद्भुत अभिनय होनेवाला था, जिसपर अलफ्रेड थियेटरके हजारों अभिनय बलिदान थे। आज एक गुप्तरहस्य खुलनेवाला था, जो अन्धेरेमें राई है, पर प्रकाशमें पर्वताकार हो जाता है। इस घटनाके सम्बन्धमें लोग टीका-टिप्पणी कर रहे थे। कोई कहता

था, यह असम्भव है, कि रूपचन्द जैसा शिक्षित व्यक्ति ऐसा दूषित कर्म करे। पुलिसका यह बयान है तो हुआ करे। गवाह पुलिसके बयानका समर्थन करते हैं तो किया करें। यह पुलिसका अत्यचार है, अन्याय है। कोई कहता था, भाई सत्य तो यह है कि यह रूप लावण्य, यह "खंजन गंजन नयन" और यह हृदय-हारिणी सुन्दर सलोनी छवि जो कुछ न करे वह थोड़ा है। श्रोता इन बातोंको बड़े चावसे इस तरह आश्चर्यान्वित हो मुँह बाकर सुनते थे, मानो देववाणी हो रही है। सबकी जीभपर यही चर्चा थी। खूब नमक मिर्च लपेटा जाता था। परन्तु इसमें सहानुभूति या समवेदनाके लिये जरा भी स्थान न था।

[६]

पण्डित कैलासनाथका बयान खतम हो गया और कामिनी इजलासपर पधारी। इसका बयान बहुत संक्षिप्त था—मैं अपने कमरेमें रातको सो रही थी। कोई एक बजेके करीब चोर-चोरका हल्ला सुनकर मैं चौंक पड़ी और अपनी चारपाईके पास चार आदमियोंको हाथापाई करते देखा। मेरे भाई साहब अपने दो चौकीदारोंके साथ अभियुक्तको पकड़ते थे और वह जान छुड़ाकर भागना चाहता था। मैं शीघ्रतासे उठकर बरामदेमें निकल आयी। इसके बाद मैंने चौकीदारोंको अपराधीके साथ पुलिस स्टेशनकी ओर जाते देखा।

रूपचन्दने कामिनीका बयान सुना और एक ठण्ढी साँस ली। नेत्रोंके आगेसे परदा हट गया। कामिनी, तू ऐसी कृतघ्न ऐसी अन्यायी, ऐसी पिशाचिनी, ऐसी दुरात्मा है! क्या तेरी

वह प्रीति, वह विरह-वेदना, वह प्रेमोद्गार, सब धोखेकी टट्टी थी। तूने कितनी बार कहा है कि दृढ़ता प्रेम-मन्दिरकी पहिली सीढ़ी है। तूने कितनी बार नयनोंमें आँसू भरकर इसी गोदमें मुँह छिपाकर मुझसे कहा है कि मैं तुम्हारी हो गयी। मेरी लाज अब तुम्हारे हाथमें है; परन्तु हाय! आज प्रेम-परीक्षाके समय तेरी वह सब बातें खोटी उतरीं। आह! तूने दगा दिया और मेरा जीवन मिट्टीमें मिला दिया।

रूपचन्द तो विचार-तरंगोंमें निमग्न था। उनके वकीलने कामिनीसे जिरह करनी प्रारम्भ की।

वकील—क्या तुम सत्यनिष्ठाके साथ कह सकती हो कि रूपचन्द तुम्हारे मकानपर अक्सर नहीं जाया करता था?

कामिनी—मैंने कभी उसे अपने घरपर नहीं देखा।

वकील—क्या तुम शपथपूर्वक कह सकती हो कि तुम उसके साथ कभी थियेटर देखने नहीं गयी?

कामिनी—मैंने उसे कभी नहीं देखा।

वकील—क्या तुम शपथ लेकर कह सकती हो कि तुमने उसे प्रेम-पत्र नहीं लिखे?

शिकारके चंगुलमें फँसे हुए पक्षीकी तरह पत्रका नाम सुनते ही कामिनीके होश हवाश उड़ गये, हाथ पैर फूल गये। मुँह न खुल सका। जजने, वकीलने और दो सहस्र आँखोंने उसकी तरफ उत्सुकतासे देखा।

रूपचन्दका मुँह खिल गया। उसके हृदयमें आकाशका उदय हुआ। जहाँ फूल था वहाँ काँटा पैदा हुआ। मनमें कहने लगा—कुलटा है।

प्रतिष्ठापर मेरे और मेरे परिवारकी हत्या करनेवाली कामिनी !! तू अब भी मेरे हाथमें है। मैं अब भी तुझे इस कृतघ्नता और कपटका दण्ड दे सकता हूँ। तेरे पत्र जिन्हें तूने सत्य हृदयसे लिखे हैं या नहीं, मालूम नहीं, परन्तु जो मेरे हृदयकी तापको शीतल करनेके लिये मोहिनी मन्त्र थे, वह सब मेरे पास हैं और वह इसी समय तेरा सब भेद खोलेंगे। इस क्रोधसे उन्मत्त होकर रूपचन्दने अपने कोटकी पाकेटमें हाथ डाला। जजने, वकीलोंने और दो सहस्र नेत्रोंने उसकी तरफ चातककी भाँति देखा।

तब कामिनीकी विकल आँखें चारों ओरसे हताश होकर रूपचन्दकी ओर पहुँचीं। उनमें इस समय लज्जा थी, दयाभिक्षाकी प्रार्थना थी और व्याकुलता थी, मन-ही-मन कहती थी—मैं स्त्री हूँ, अबला हूँ, ओछी हूँ, तुम पुरुष हो, बलवान हो, साहसी हो, यह तुम्हारे स्वभावके विपरीत है। मैं कभी तुम्हारी थी और यद्यपि समय मुझे तुमसे अलग किए देता है, किन्तु मेरी लाज तुम्हारे हाथमें है, तुम मेरी रक्षा करो। आँखें मिलते ही रूपचंद उसके मनकी बात ताड़ गये। उनके नेत्रोंने उत्तर दिया—यदि तुम्हारी लाज मेरे हाथोंमें है तो इसपर कोई आँच नहीं आने पावेगी। तुम्हारी लाजपर आज मेरा सर्वस्व निछावर है।

अभियुक्तके वकीलने कामिनीसे पुनः वही प्रश्न किया—क्या तुम शपथपूर्वक कह सकती हो कि तुमने रूपचन्दको प्रेमपत्र नहीं लिखे ?

कामिनीने कातर स्वरमें उत्तर दिया—मैं शपथपूर्वक कहती हूँ कि मैंने उसे कभी कोई पत्र नहीं लिखा और अदालतसे अपील करती हूँ कि वह मुझे इन घृणास्पद अश्लील आक्रमणोंसे बचावे।

अभियोगकी कार्रवाई समाप्त हो गयी। अब अपराधीके लिये बयानकी बारी आयी। इसकी तरफ सफाईके कोई गवाह न थे। परन्तु वकीलोंको, जजको और अधीर जनताको पूरा पूरा विश्वास था कि अभियुक्तका बयान पुलिसके मायावी महलको क्षण-मात्रमें छिन्न-भिन्न कर देगा। रूपचन्द इजलासके सम्मुख आया। इसके मुखारविन्दपर आत्मबलका तेज झलक रहा था और नेत्रोंसे साहस और शान्ति। दर्शक मण्डली उतावली होकर अदालतके कमरेमें घुस पड़ी। रूपचन्द इस समयका चाँद था या देवलोकका दूत। सहस्रों नेत्र उसकी ओर लगे थे। किन्तु हृदयको कितना कौतूहल हुआ, जब रूपचन्दने अत्यन्त शान्त चित्तसे अपना अपराध स्वीकार कर लिया। लोग एक दूसरेका मुँह ताकने लगे।

अभियुक्तका बयान समाप्त होते ही कोलाहल मच गया। सभी इसकी आलोचना प्रत्यालोचना करने लगे। सबके मुँहपर आश्चर्य था, सन्देह था और निराशा थी। कामिनीकी कृतघ्नता और निष्ठुरतापर धिक्कार हो रही थी। प्रत्येक मनुष्य शपथ खानेपर तैयार था कि रूपचन्द सर्वथा निर्दोष है। प्रेमने उसके मुँहपर ताला लगा दिया है। पर कुछ ऐसे भी दूसरेके दुःखमें प्रसन्न होनेवाले स्वभावके लोग थे जो उसके इस साहसपर हँसते और मजाक उड़ाते थे।

दो घण्टे बीत गये। अदालतमें पुनः एक बार शान्तिका राज्य हुआ। जज साहब फैसला सुनानेके लिये खड़े हुए। फैसला बहुत संक्षिप्त था। अभियुक्त जवान है, शिक्षित है और सभ्य है। अतएव आँखोंका अन्धा। इसे शिक्षाप्रद दण्ड देना आवश्यक

है। अपराध स्वीकार करनेसे उसका दण्ड कम नहीं होता। अतः मैं उसे ५ वर्षके सपरिश्रम कारावासकी सजा देता हूँ।

दो हजार मनुष्योंने हृदय थामकर फैसला सुना। मालूम होता था कि कलेजेमें भाले चुभ गये हैं। सभीका मुँह निराशा-जनक क्रोधसे रक्तवर्ण हो रहा था। यह अन्याय है, कठोरता है और बेरहमी है। परन्तु रूपचन्दके मुँहपर शान्ति विराज रही थी।

दुर्गाका मन्दिर--

[१]

बाबू ब्रजनाथ कानून पढ़नेमें मग्न थे और उनके दोनों बच्चे लड़ाई करनेमें। श्यामा चिल्लाती थी कि मुन्नू मेरी गुड़िया नहीं देता। मुन्नू रोता था कि श्यामाने मेरी मिठाई खा ली।

ब्रजनाथने क्रुद्ध होकर भामासे कहा—तुम इन दुष्टोंको यहाँसे हटाती हो कि नहीं, नहीं तो मैं एक-एककी खबर लेता हूँ।

भामा चूल्हेमें आग जला रही थी, बोली--अरे तो अब क्या सन्ध्याको भी पढ़ते ही रहोगे? जरा दम तो ले लो।

ब्रजनाथ—उठा तो न जायगा; बैठी बैठी वहींसे कानून बघार रही हो। अभी एक-आधको पटक दूँगा तो वहांसे गरजती हुई आओगी कि हाय! हाय! बच्चेको मार डाला।

भामा—तो मैं कुछ बैठी या सोई तो नहीं हूँ, जरा एक घड़ी तुम्हीं लड़कोंको बहला दोगे तो क्या होगा। कुछ मैंने ही उनकी नौकरी नहीं लिखायी!

बाबू ब्रजनाथसे कोई जबाव न देते बन पड़ा। क्रोध, पानीके समान बहावका मार्ग न पाकर और भी प्रबल हो जाता है। यद्यपि ब्रजनाथ नैतिक सिद्धान्तोंके ज्ञाता थे, पर उनके पालन-में इस समय कुशल न दिखायी दी। मुद्दई और मुद्दालेह दोनों-को एक ही लाठी हांका और दोनोंको रोते-चिल्लाते छोड़ कानून का ग्रंथ बगलमें दबा, कालेज-पार्ककी राह ली।

[२]

सावनका महीना था। आज कई दिनके बाद बादल खुले थे, हरे-भरे वृक्ष सुनहरी चादरें ओढ़ खड़े थे। मृदु समीर सावनके राग गाती थी और बगुले डालियोंपर बैठे हिंडोले झूल रहे थे। ब्रजनाथ एक बेंचपर जा बैठे और किताब खोली, लेकिन इस ग्रंथकी अपेक्षा प्रकृति ग्रंथका अवलोकन अधिक चित्ताकर्षक था। कभी आसमानको पढ़ते थे, कभी पत्तियोंको, कभी छविमयी हरियालीको और कभी सामने मैदानमें खेलते हुए लड़कोंको।

यकायक उन्हें सामने घासपर कागजकी एक पुड़िया दिखाई दी। मायाने जिज्ञासाकी आड़में कहा—देखें इसमें क्या है?

बुद्धिने कहा—तुमसे मतलब? पड़ी रहने दो।

लेकिन जिज्ञासा-रूपी मायाकी जीत हुई। ब्रजनाथने उठकर पुड़िया उठा ली। कदाचित् किसीके पैसे पुड़ियामें लिपटे गिर

पड़े हैं। खोलकर देखा, वे सावरेन थे! गिना पूरे आठ निकले। कुतूहलकी सीमा न रही।

ब्रजनाथकी छाती धड़कने लगी। आठो सावरेन हाथमें लिये वे सोचने लगे—इन्हें क्या करूँ? अगर यहीं रख दूँ तो न जाने किसकी नजर पड़े, न मालूम कौन उठा ले जाय! नहीं, यहाँ रखना उचित नहीं, चलूँ थानेमें इसकी इत्तला कर दूँ और ये सावरेन थानेदारको सौंप दूँ। जिसके होंगे वह आप ले जायगा या अगर उसे न भी मिले तो मुझपर कोई दोष न रहेगा; मैं तो अपने उत्तरदायित्वसे मुक्त हो जाऊँगा।

मायाने परदेकी आड़से मन्त्र मारना प्रारम्भ किया। वे थाने न गये; सोचा; चलूँ, भामासे एक दिल्लगी करूँ। भोजन तैयार होगा। कल इतमिनानसे थाने जाऊँगा।

भामाने सावरेन देखे, हृदयमें एक गुदगुदी-सी हुई। पूछा—किसकी हैं?

-'मेरी।"

"चलो, कहीं हो न।"

"पड़ी मिली हैं।"

"झूठी बात। ऐसे ही भाग्यके बली हो तो सच बताओ कहा मिलीं? किसकी हैं?"

"सच कहता हूँ पड़ी मिली हैं।"

"मेरी कसम?"

"तुम्हारी कसम।"

भामा गिन्नियोंको पतिके हाथसे छीननेकी चेष्टा करने लगी। ब्रजनाथने कहा—क्यों छीनती हो?

मामा—लाओ मैं अपने पास रख लूँ।

"रहने दीजिये, मैं इनकी इत्तला करने थाने जाता हूँ।"

भाभाका मुख मलीन हो गया। बोली—पड़े हुए धनकी क्या इत्तला?

ब्रजनाथ—हाँ और क्या, इन आठ गिन्नियोंके लिये ईमान बिगाड़ूँ न?

भाभा—अच्छा तो सवेरे चले जाना। इस समय जाओगे तो आनेमें देरी होगी।

ब्रजनाथने भी सोचा, यही अच्छा है। थानेवाले रातको तो कोई कार्रवाई करेंगे नहीं। अब अशर्फियोंको पड़ा ही रहना है तब जैसे थाना वैसे मेरा घर।

गिन्नियाँ सन्दूकमें रख दीं। खा-पीकर लेटे तो भामाने हँस-कर कहा—आया धन क्यों छोड़ते हो, लाओ मैं अपने लिये एक गुलूबन्द बनवा लूँ, बहुत दिनोंसे जी तरस रहा है।

मायाने इस समय हास्यका रूप धारण किया था।

ब्रजनाथने तिरस्कार करके कहा—गुलूबन्दकी लालसामें गलेमें फाँसी लगाना चाहती हो क्या?

[३]

प्रातःकाल ब्रजनाथ थाने चलनेके लिये प्रस्तुत हुए। कानून-का एक लेक्चर छूट जायगा कोई हरज नहीं। वे इलाहाबादके हाईकोर्टमें अनुवादक थे। नौकरीमें उन्नतिकी आशा देखकर सालभरसे वकालतकी तैयारीमें मग्न थे। लेकिन अभी कपड़े पहिन ही रहे थे कि उनके एक मित्र, मुन्शी गोरेलाल आकर बैठ गये

और अपनी पारिवारिक दुश्चिन्ताओंकी विस्तृत राम-कहानी सुनाकर अत्यन्त विनयभावसे बोले—भाई साहब, इस समय मैं इन झंझटोंमें ऐसा फँस गया हूँ कि बुद्धि कुछ काम नहीं करती। तुम बड़े आदमी हो। इस समय कुछ सहायता करो। ज्यादा नहीं, तीस रुपये दे दो। किसी-न-किसी तरह काम चला लूँगा। आज ता० ३० है। कल शामको तुम्हे रुपये मिल जायँगे।

ब्रजनाथ बड़े आदमी तो न थे, किन्तु बड़प्पनकी हवा बाँध रखी थी। यह मिथ्याभिमान उनके स्वभावकी एक दुर्बलता थी। केवल अपने वैभवका प्रभाव डालनेके लिये ही वे बहुधा मित्रोंकी छोटी-मोटी आवश्यकताओंपर अपनी वास्तविक आवश्यकताओंका अर्पण कर दिया करते थे। लेकिन भामाको इस विषयमें उनसे सहानुभूति न थी। वह दिखानेके लिये इस आत्म-त्यागको व्यर्थ समझती थी। इसलिये जब ब्रजनाथपर इस प्रकारका संकट आ पड़ता था, तब थोड़ी देरके लिये उनकी पारिवारिक शान्ति अवश्य भङ्ग हो जाती थी। उनमें इन्कार करने या टालने की हिम्मत न थी।

वे कुछ सकुचाते हुए भामाके पास गये और बोले—तुम्हारे पास तीस रुपये तो न होंगे? मुन्शी गोरेलाल माँग रहे हैं।

भामाने रुखाईसे कहा—मेरे पास रुपये नहीं हैं।

ब्रजनाथ—होंगे तो जरूर, बहाना करती हो।

भामा—अच्छा, बहाना सही।

ब्रजनाथ—तो मैं उनसे क्या कह दूँ?

भामा—कह दो, घरमें रुपये नहीं हैं, तुमसे न कहते बने तो मैं पर्देकी आड़से कह दूँ।

ब्रजनाथ—कहनेको तो मैं कह दूँ, लेकिन उन्हें विश्वास न आवेगा, समझेंगे बहाना कर रहे हैं।

भामा—समझेंगे; समझा करें।

ब्रजनाथ—मुझसे तो ऐसी बेमुरौवती नहीं हो सकती। रात दिनका साथ ठहरा कैसे इन्कार करूँ?

भामा—अच्छा, तो जो मनमें आवे सो करो। मैं एक बार कह चुकी हूँ कि मेरे पास रुपये नहीं हैं।

ब्रजनाथ मनमें बहुत खिन्न हुए। उन्हें विश्वास था कि भामाके पास रुपये हैं, लेकिन केवल मुझे लज्जित करनेके लिये इन्कार कर रही है। दुराग्रहने सङ्कल्पको दृढ़ कर दिया। सन्दूकसे दो गिन्नियाँ निकालीं और गोरेलालको देकर बोले—भाई कल शामको कचहरीसे आते ही रुपये दे जाना। ये एक आदमीकी अमानत हैं। मैं इसी समय देने जा रहा था। यदि कल रुपये न पहुँचे तो मुझे बहुत लज्जित होना पड़ेगा; कहीं मुँह दिखाने योग्य न रहूँगा।

गोरेलालने मनमें कहा—अमानत स्त्रीके सिवा और किसकी होगी और गिन्नियाँ जेबमें रखकर घरकी राह ली।

४

आज पहली तारीखकी सन्ध्या है। ब्रजनाथ दरवाजेपर बैठे हुए गोरेलालका इन्तज़ार कर रहे हैं।

पाँच बज गये, गोरेलाल अभीतक नहीं आये। ब्रजनाथकी आँखें रास्तेकी तरफ लगी हुई थीं। हाथमें एक पत्र था। लेकिन पढ़नेमें जी न लगता था। हर तीसरे मिनट रास्तेकी ओर देखने

लगते थे। लेकिन आज वेतन मिलनेका दिन है। इसी कारण आनेमें देर हो रही है; आते ही होंगे। छः बजे; गोरेलालका पता नहीं। कचहरीके कर्मचारी एक-एक करके चले आ रहे थे। ब्रजनाथको कई बार धोखा हुआ। वे आ रहे हैं। जरूर वे ही हैं। वैसी ही अचकन है। वैसी ही टोपी। चाल भी वही है। हाँ, वही हैं। इसी तरफ आ रहे हैं। अपने हृदयसे एक बोझसा उतरता मालूम हुआ। लेकिन निकट आनेपर ज्ञात हुआ कि कोई और है। आशाकी कल्पित मूर्ति दुराशामें विलीन हो गयी।

ब्रजनाथका चित्त खिन्न होने लगा। वे एक बार कुरसीपरसे उठे। बरामदेकी चौखटपर खड़े होकर सड़कके दोनों तरफ निगाह दौड़ायी। कहीं पता नहीं।

दो-तीन बार दूरसे आते हुए इक्कोंको देखकर गोरेलालका भ्रम हुआ। आकांक्षाकी प्रबलता!

सात बजे। चिराग जल गये। सड़कपर अन्धेरा छाने लगा। ब्रजनाथ सड़कपर उद्विग्न भावसे टहलने लगे। इरादा हुआ गोरेलालके घर चलूँ। उधर कदम बढ़ाये। लेकिन हृदय काँप रहा था कि कहीं वे रास्तेमें जाते हुए मिल जायँ तो समझेंगे कि थोड़ेसे रुपयेके लिये इतने व्याकुल हो गये। थोड़ी ही दूर गये कि किसीको आते देखा। भ्रम हुआ गोरेलाल हैं। मुड़े और सीधे बरामदेमें आकर दम लिया। लेकिन फिर वही धोखा! फिर वही भ्रान्ति। तब सोचने लगे कि इतनी देर क्यों हो रही है। क्या अभीतक वे कचहरीसे न आये होंगे? ऐसा कदापि नहीं हो सकता। उनके दफ्तरवाले मुद्दत हुई निकल गये

बस, दो बातें हो सकती हैं। या तो उन्होंने कल आनेका निश्चय कर लिया, समझे होंगे कि रातको कौन जाय या जान-बूझकर बैठ रहे होंगे; देना न चाहते होंगे। उस समय उनकी गरज थी इस समय मेरी गरज है। मैं ही किसीको क्यों न भेज दूँ, लेकिन किसे भेजूँ! मन्नू जा सकता है। सड़क ही पर मकान है। यह सोचकर कमरेमें गये। लैम्प जलाया और पत्र लिखने बैठे, मगर आँखें द्वार हीकी ओर लगी हुई थीं। अकस्मात् किसीके पैरकी आहट सुनाई दी। तुरन्त पत्रको एक किताबके नीचे दबा लिया और बरामदेमें चले आये। देखा तो पड़ोसका एक कुंजड़ा है, तार पढ़ाने आया है। उससे बोले—भाई, इस समय फुरसत नहीं है, थोड़ी देरमें आना।

उसने कहा—बाबूजी, घरपरके प्राणी घबराये हैं, जरा एक निगाह देख लीजिये।

निदान ब्रजनाथने झुँझलाकर उसके हाथसे तार ले लिया। और सरसरी दृष्टिसे देखकर बोले—कलकत्तेसे आया है, माल नहीं पहुँचा।

कुँजड़ेने डरते-डरते कहा—बाबूजी, इतना और देख लीजिये कि किसने भेजा है।

इस पर ब्रजनाथने तारको फेंक दिया और बोले— मुझे इस वक्त फुरसत नहीं है।

आठ बज गये। ब्रजनाथको निराशा होने लगी। मन्नू इतनी रात बीते नहीं जा सकता। मनने निश्चय किया, मुझे आपही जाना चाहिये; बलासे बुरा मानेंगे। इसकी कहाँतक चिन्ता करूँ। स्पष्ट कह दूंगा, मेरे रुपये दे दो। भलमनसी भलेमानसोंसे निभायी

जा सकती है। ऐसे धूर्तोंके साथ भलमनसीका व्यवहार करना मूर्खता है। अचकन पहनी। घरमें जाकर भामासे कहा—जरा एक कामसे बाहर जाता हूं किवाड़ बन्द कर लो।

चलनेको तो चले, लेकिन पग-पगपर रुकते जाते थे। गोरेलालका घर दूरसे दिखायी दिया; लैम्प जल रहा था। ठिठक गये और सोचने लगे—चलकर क्या कहूँगा? कहीं उन्होंने जाते-जाते रुपये निकालकर दे दिये और देरीके लिये क्षमा माँगी, तो मुझे बड़ी झेप होगी। वे मुझे क्षुद्र, ओछा, धैर्यहीन समझेंगे। नहीं, रुपयेकी बातचीत करूँ ही क्यों? कहूँगा, भाई घरमें बड़ी देरसे पेट दर्द कर रहा है। तुम्हारे पास पुराना तेज सिरका तो नहीं है, मगर नहीं, यह बहाना कुछ भद्दा-सा प्रतीत होता है। साफ कलई खुल जायगी। उँह! इस झंझटकी जरूरत ही क्या है। वे मुझे देखकर खुद ही समझ जायँगे। इस विषयमें बातचीतकी कुछ नौबत ही न आवेगी। ब्रजनाथ इसी उधेड़-बुनमें आगे बढ़ते चले जाते थे जैसे नदीकी लहरें चाहे किसी ओर चले, धारा अपना मार्ग नहीं छोड़ती।

गोरेलालका घर आ गया। द्वार बन्द था। ब्रजनाथको उन्हें पुकारनेका साहस न हुआ। समझे, खाना खा रहे होंगे। दरवाजेके सामनेसे निकले और धीरे-धीरे टहलते हुए एक मीलतक चले गये। ९ बजनेकी आवाज कानमें आयी। गोरेलाल भोजन कर चुके होंगे, यह सोचकर लौट पड़े। लेकिन द्वारपर पहुँचे तो अन्धेरा था। वह आकाशरूपी दीपक बुझ गया था। एक मिनटतक दुविधामें खड़े रहे। क्या करूँ? हाँ, अभी बहुत सबेरा है। इतनी जल्दी थोड़े ही सो गये होंगे। दबे पाँव बरामदेपर चढ़े।

द्वारपर कान लगाकर सुना, चारों ओर ताक रहे थे कि कहीं कोई देख न ले। कुछ बातचीतकी भनक कानमें पड़ी। ध्यानसे सुना। स्त्री कह रही थी—"रुपये तो सब उठ गये, ब्रजनाथको कहाँसे दोगे?" गोरेलालने उत्तर दिया—ऐसी कौन-सी उतावली है, फिर दे देंगे। आज दरख्वास्त दे दी है। कल मञ्जूर हो जायगी, तीन महीनेके बाद लौटेंगे तो देखा जायगा।

ब्रजनाथको ऐसा जान पड़ा मानों मुँहपर किसीने तमाचा मार दिया। क्रोध और नैराश्यसे भरे हुए बरामदेसे उतर आये। घर चले तो सीधे कदम न पड़ते है, जैसे दिनभरका थका-माँदा पथिक।

[५]

ब्रजनाथ रातभर करवटें बदलते रहे। कभी गोरेलालकी धूर्त्ततापर क्रोध आता था। कभी अपनी सरलतापर क्रोध होता था। मालूम नहीं, किस गरीबके रुपये हैं, उसपर क्या बीती होगी। लेकिन अब क्रोध या खेदसे क्या लाभ? सोचने लगे-- रुपये कहाँसे आवेंगे; भामा पहले ही इंकार कर चुकी है, वेतनमें इतनी गुंजायश नहीं; दस-पाँच रुपयेकी बात होती तो कोई कतर-ब्योंत तो करता। तो क्या करूँ किसीसे उधार लूँ? मगर मुझे कौन देगा? आजतक किसीसे माँगनेका संयोग नहीं पड़ा और अपना कोई ऐसा मित्र है भी तो नहीं! जो लोग हैं मुझीको सताया करते हैं, मुझे क्या देंगे। हाँ, यदि कुछ दिन कानून छोड़कर अनुवाद करनेमें परिश्रम करूँ तो रुपये मिल सकते हैं। कमसे-कम एक मासका कठिन परिश्रम है। सस्ते अनुवादकोंके

मारे दर भी तो गिर गयी। हा निर्दयी! तूने बड़ा दगा किया। न जाने किस जन्मका बैर चुकाया। कहींका न रखा!

दूसरे दिनसे ब्रजनाथको रुपयोंकी धुन सवार हुई। सवेरे कानूनके लेक्चरमें सम्मिलित होते। सन्ध्याको कचहरीसे तर्जुमोंका पुलिन्दा घर लाते और आधी राततक बैठे अनुवाद किया करते! सिर उठानेकी मुहलत न मिलती। कभी एक दो भी बज जाते। जब मस्तिष्क बिलकुल शिथिल हो जाता, तब विवश होकर चारपाईपर पड़ रहते।

लेकिन इतने परिश्रमका अभ्यास न होनेके कारण कभी-कभी सिरमें दर्द होने लगता। कभी पाचन-क्रियामें विघ्न पड़ जाता, कभी ज्वर चढ़ आता। तिसपर भी वे मैशीनकी तरह काममें लगे रहते। भामा कभी-कभी झुंझलाकर कहती—"अजी लेट भी रहो; बड़े धर्मात्मा बने हो। तुम्हारे जैसे दस-पाँच आदमी और होते तो संसारका काम ही बन्द हो जाता।" ब्रजनाथ इस बाधाकारी व्यंगका कोई उत्तर न देते। दिन निकलते ही फिर वही चरखा ले बैठते।

यहाँतक कि तीन सप्ताह बीत गये और २५) हाथ आ गये। ब्रजनाथ सोचते थे, कि दो तीन दिनमें बेड़ा पार है। लेकिन इक्कीसवें दिन उन्हें प्रचण्ड ज्वर चढ़ आया और तीन दिनतक न उतरा। छुट्टी लेनी पड़ी। शय्या सेवी बन गये। भादोंका महीना था। भामाने समझा कि पित्तका प्रकोप है। लेकिन जब एक सप्ताहतक डाक्टरकी औषधि सेवन करनेपर भी ज्वर न उतरा तब वह घबराई। ब्रजनाथ प्रायः ज्वरमें बकझक भी करने लगते; भामा सुनकर डरके मारे कमरेसे भाग जाती। बच्चोंको पकड़कर

दूसरे कमरेमें बन्द कर देती। अब उसे शङ्का होने लगती थी कि कहीं यह कष्ट उन्हीं रुपयोंके कारण तो नहीं भोगना पड़ रहा है। कौन जाने रुपयेवालेने कुछ कर धर दिया हो! जरूर यही बात है, नहीं तो औषधिसे लाभ क्यों नहीं होता। संकट पड़नेपर हम धर्मभीरु हो जाते हैं। भामाने भी देवताओंकी शरण ली। वह जन्माष्टमी, शिवरात्रि और तीजके सिवा और कोई व्रत न रखती थी। इस बार उसने नौरात्रका कठिन व्रत पालन करना आरम्भ किया।

आठ दिन पूरे हो गये। अन्तिम दिन आया। प्रभातका समय था। भामाने ब्रजनाथको दवा पिलायी और दोनों बालकोंको लेकर दुर्गाजीकी पूजा करने मन्दिरमें चली। उसका हृदय आराध्य देवीके प्रति श्रद्धासे परिपूर्ण था। मन्दिरके आंगनमें पहुँची। उपासक आसनोंपर बैठे हुए दुर्गापाठ कर रहे थे। धूप और अगरकी सुगन्धि उड़ रही थी। उसने मन्दिरमें प्रवेश किया। सामने दुर्गाकी विशाल प्रतिमा शोभायमान थी। उसके मुखारविन्दसे एक विलक्षण दीप्ति झलक रही थी। बड़े उज्वल नेत्रोंसे प्रभाकी किरणें आलोकित हो रही थीं। पवित्रताका एक समाँसा छाया हुआ था। भामा इस दीप्तिपूर्ण मूर्तिके सम्मुख सीधी आँखोंसे ताक न सकी। उसके अन्तःकरणमें एक निर्मल विशुद्ध, भावपूर्ण भय उदय हो गया। उसने आँखें बन्द कर लीं, घुटनोंके बल बैठ गयी और कर जोड़कर करुण स्वरमें बोली— माता! मुझपर दया करो।

उसे ऐसा ज्ञात हुआ मानो देवी मुस्कुराईं। उसे उन दिव्य नेत्रोंसे एक ज्योतिसी निकलकर अपने हृदयमें आती हुई मालूम

हुई। उसके कानोंमें देवीके मुँहसे निकले ये शब्द सुनाई दिये—"पराया धन लौटा दे, तेरा भला होगा।"

भामा उठ बैठी। उसकी आँखोंमें निर्मल भक्तिका आभाव झलक रहा था। मुखमण्डलसे पवित्र प्रेम बरसा पड़ता था। देवीने कदाचित् उसे अपनी प्रभाके रङ्गमें डुबा दिया था।

इतनेमें दूसरी एक स्त्री आयी। उसके उज्ज्वल केश बिखरे और मुरझाये हुए चेहरे दोनों ओर लटक रहे थे। शरीरपर केवल एक श्वेत साड़ी थी। हाथमें चूड़ियोंके सिवा और कोई आभूषण न था। शोक और नैराश्यकी साक्षात् मूर्त्ति मालूम होती थी। उसने भी देवीके सामने सिर झुकाया और दोनों हाथोंसे आँचल फैलाकर बोली—देवी, जिसने मेरा धन लिया हो उसका सर्वनाश करो।

जैसे सितार मिजराबकी चोट खाकर थरथरा उठता है उसी प्रकार भामाका हृदय अनिष्टके भयसे थरथरा उठा। ये शब्द तीव्र शरके समान उसके कलेजेमें चुभ गये। उसने देवीकी ओर कातर नेत्रोंसे देखा। उनका ज्योतिर्मय स्वरूप भयङ्कर था और नेत्रोंसे भीषण ज्वाला निकल रही थी। भामाके अन्तःकरणमें सर्वत्र आकाशसे, मन्दिरके सामनेवाले वृक्षोंसे, मन्दिरके स्तम्भोंसे, सिंहासनके ऊपर जलते हुए दीपकसे, और देवीके विकराल मुँहसे ये शब्द निकल कर गूजने लगे—"पराया धन लौटा दे नहीं तो तेरा सर्वनाश हो जायगा।"

भामा खड़ी हो गयी और उस वृद्धासे बोली—क्यों माता! तुम्हारा धन किसीने ले लिया है?

वृद्धाने इस प्रकार उसकी ओर देखा, मानों डूबतेको तिनकेका

सहारा मिला। बोली, हाँ बेटी।

"कितने दिन हुए ?"

"कोई डेढ महीना।"

"कितने रुपये थे ?"

"पूरे एक सौ बीस।"

"कैसे खोये ?"

"क्या जाने कहां गिर गये। मेरे स्वामी पल्टनमें नौकर थे। आज कई बरस हुए वे परलोक सिधारे। अब मुझे सरकारसे ६०) साल पेंशन मिलती है। अबकी दो सालकी पेंशन एक साथ ही मिली थी। खजानेसे रुपये लेकर आ रही थी। मालूम नहीं कब और कहाँ गिर पड़े, आठ गिन्नियाँ थीं।"

"अगर वे तुम्हें मिल जायँ तो क्या दोगी ?"

"अधिक नहीं उनमेंसे ५०) रुपये दे दूँगी।"

"रुपये क्या होंगे, कोई उससे अच्छी चीज दो।"

"बेटी! और क्या दूँ, जबतक जीऊँगा तुम्हारा यश गाऊँगी।"

"नहीं, इसकी मुझ आवश्यकता नहीं।"

"बेटी इसके सिवा मेरे पास क्या है ?"

"मुझे आशीर्वाद दो। मेरे पति बीमार हैं वे अच्छे हो जायँ।"

"क्या उन्हींको रुपये मिले हैं ?"

"हाँ, वे उसी दिनसे तुम्हें खोज रहे हैं।"

"वृद्धा घुटनोंके बल बैठ गयी और आँचल फैलाकर कम्पित स्वरसे बोली--देवी, इनका कल्याण करो।

भामाने फिर देवीको ओर आशङ्कित दृष्टिसे देखा। उनके

दिव्य रूपपर प्रेमका प्रकाश था। आँखोंमें दयाकी आनन्द-दायिनी झलक थी। उस समय भामाके अन्तःकरणमें कहीं स्वर्ग-लोकसे यह ध्वनि सुनाई दी--जा तेरा कल्याण होगा।

[६]

सन्ध्याका समय है। भामा ब्रजनाथके साथ इक्केपर बैठ तुलसीके घर उसकी थाती लौटाने जा रही है ब्रजनाथके बड़े परिश्रमकी कमाई तो डाक्टरकी भेंट हो चुकी है, लेकिन भामाने एक पड़ोसीके हाथ अपने कानोंके झूमक बेचकर रुपये जुटाये हैं। जिस समय झूमक बनकर आये थे, भामा बहुत प्रसन्न हुई थी। आज उन्हें बेचकर वह उससे भी अधिक प्रसन्न है।

जब ब्रजनाथने आठों गिन्नियाँ उसे दिखायी थीं, उसके हृदयमें एक गुदगुदी-सी हुई थी। लेकिन यह हर्ष मुखपर आने-का साहस न कर सका था। आज उन गिन्नियोंको हाथसे जाते समय उसका हार्दिक आनन्द आँखोंमें चमक रहा है, ओठोंपर नाच रहा है, कपोलोंको रंग रहा है और अङ्गोंपर किलोलें कर रहा है। वह इन्द्रियोंका आनन्द था, यह आत्माका आनन्द है। वह आनन्दलज्जाके भीतर छिपा हुआ था, यह आनन्द गर्वसे बाहर निकला पड़ता है।

तुलसीका आशीर्वाद सफल हुआ। आज पूरे तीन सप्ताहके बाद ब्रजनाथ तकियेके सहारे बैठे थे। वे बार-बार भामाको प्रेम-पूर्ण नेत्रोंसे देखते थे। वह आज उन्हें देवी मालूम होती थी। अबतक उन्होंने उसके वाह्य सौन्दर्यकी शोभा देखी थी। आज वह उसका आत्मिक सौन्दर्य देख रहे हैं।

तुलसीका घर एक गलीमें था। इक्का सड़कपर जाकर ठहर गया। ब्रजनाथ इक्केपरसे उतरे और अपनी छड़ी टेकते हुए भामाके हाथोंके सहारे तुलसीके घर पहुँचे। तुलसीने रुपये लिये और दोनों हाथ फैलाकर आशीर्वाद दिया—दुर्गाजी तुम्हाराकल्याण करें!

तुलसीका वर्णहीन मुख यों खिल गया। जैसे वर्षाके पीछे वृक्षोंकी पत्तियाँ खिल जाती हैं, सिमटा हुआ अङ्ग फैल गया, गालोंकी झुर्रियाँ मिटती देख पड़ीं। ऐसा मालूम होता था, मानों उसका कायाकल्प हो गया।

वहांसे आकर ब्रजनाथ अपने द्वारपर बैठे हुए थे कि गोरेलाल आकर बैठ गये। ब्रजनाथने मुँह फेर लिया।

गोरेलाल बोले—भाई साहब, कैसी तबियत है?

ब्रजनाथ—बहुत अच्छी तरह हूँ।

गोरेलाल—मुझे क्षमा कीजियेगा। मुझे इसका बहुत खेद है कि आपके रुपये देनेमें इतना विलम्ब हुआ। पहलो तारीखको घरसे एक आवश्यक पत्र आ गया और मैं किसी तरह तीन महीनेकी छुट्टी लेकर घर भागा वहाँकी विपत्ति-कथा कहूँ तो समाप्त न हो। लेकिन आपकी बीमारीका शोक-समाचार सुनकर आज भागा चला आ रहा हूँ। ये लीजिये रुपये हाजिर हैं। इस विलम्बके लिये अत्यन्त लज्जित हूँ।

ब्रजनाथका क्रोध शान्त हो गया। विनयमें कितनी शक्ति है! बोले—जी हाँ, बीमार तो था, लेकिन अब अच्छा हो गया हूँ। आपको मेरे कारण व्यर्थ कष्ट उठाना पड़ा। यदि इस समय आपको असुविधा हो तो रुपये फिर दे दीजियेगा। मैं अब ऊऋण हो गया हूँ। कोई जल्दी नहीं है।

गोरेलाल बिदा हो गये तो ब्रजनाथ रुपया लिये हुए भीतर आये और भामासे बोले—ये लो अपने रुपये, गोरेलाल दे गये।

भामाने कहा—ये मेरे नहीं हैं तुलसीके हैं. एक बार पराया धन लेकर सीख गयी।

"लेकिन तुलसीके तो पूरे रुपये दे दिये गये ?"

"दे दिये गये तो क्या हुआ, ये उसके आशीर्वादकी न्यौछावर है।"

"कानके झूमक कहाँसे आवेंगे ?"

"झूमक न रहेंगे न सही, सदाके लिये कान तो हो गया।"

सेवा-मार्ग—

[१]

ताराने १२ वर्ष दुर्गाकी तपस्या की। न पलङ्गपर सोयी न केशोंको सँवारा और न नेत्रोंमें सुर्मा लगाया। पृथ्वीपर सोती, गेरुआ वस्त्र पहनती और रूखी रोटियाँ खाती। उसका मुख मुरझाई हुई कलीकी भांति था, नेत्र ज्योतिहीन और हृदय एक शून्य बीहड़ मैदान। उसे केवल यही लौ लगी थी कि दुर्गाके दर्शन पाऊँ। शरीर मोमबत्तीकी तरह घुलता था, पर यह लौ

देलसे नहीं जाती थी। यही उसकी इच्छा थी, यही उसका जीवनोद्देश्य। घरके लोग उसे पागल कहते। माता समझाती—"बेटी तुझे क्या हो गया है? क्या तू सारा जीवन रो-रोकर काटेगी? इस समयके देवता पत्थरसे होते हैं। पत्थरको भी कभी किसीने पिघलते देखा है? देख, तेरी सखियाँ पुष्पकी भांति विकसित हो रही हैं, नदीकी तरह बढ़ रही हैं; क्या तुझे मुझपर दया नहीं आती?" तारा कहती माता—"अब तो जो लगन लगी, वह लगी। या तो देवीके दर्शन पाऊँगी, या यही इच्छा लिये हुए संसारसे पयान कर जाऊँगी। तुम समझ लो मैं मर गयी।"

इस प्रकार पूरे बारह वर्ष व्यतीत हो गये और तब देवी प्रसन्न हुईं। रात्रिका समय था। चारो ओर सन्नाटा छाया हुआ था। मन्दिरमें एक धुँधलासा घीका दीपक जल रहा था। तारा दुर्गाके पैरोंपर माथा नवाये सच्ची भक्तिका परिचय दे रही थी। यकायक उस पाषाणमूर्त्तिदेवीके तनमें स्फूर्ति प्रकट हुई। ताराके रोंगटे खड़े हो गये। वह धुँधला दीपक देदीप्यमान हो गया। मन्दिरमें चित्ताकर्षक सुगन्धि फैल गयी और वायुमें सजीवता प्रतीत होने लगी। देवीका उज्ज्वल रूप पूर्ण चन्द्रमाकी भांति चमकने लगा। ज्योतिहीन नेत्र जगमगा उठे। होंठ खुल गये। आवाज आयी—तारा, मैं तुझसे प्रसन्न हूँ; माँग, क्या वर माँगती है?

तारा खड़ी हो गयी। उसका शरीर इस भाँति काँप रहा था, जैसे प्रातःकालके समय कम्पित स्वरमें किसी कृषकके गानेकी ध्वनि। उसे मालूम हो रहा था मानों वह वायुमें उड़ी जा रही है। उसे अपने हृदयमें उच्च विचार और पूर्ण प्रकाशका आभास

प्रतीत हो रहा था। उसने दोनों हाथ जोड़कर भक्ति-भावसे कहा—भगवती, तुमने मेरी १२ वर्षकी तपस्या पूरी की. किस मुखसे तुम्हारा गुणानुवाद गाऊँ। मुझे संसारकी वे अलभ्य वस्तुयें प्रदान हों, जो इच्छाओंकी सीमा और मेरी अभिलाषाओंका अन्त है। मैं वह ऐश्वर्य चाहती हूँ जो सूर्यको भी मात कर दे।

देवीने मुस्कराकर कहा—स्वीकृत है।

तारा—वह धन जो कालचक्रको भी लज्जित करे।

देवीने मुस्कराकर कहा—स्वीकृत है।

तारा—वह सौन्दर्य जो अद्वितीय हो।

देवीने मुस्कराकर कहा—यह भी स्वीकृत है।

[२]

तारा कुँवरिने शेष रात्रि जागकर व्यतीत की। प्रभातकालके समय उसकी आँखें क्षणभरके लिये झपक गयीं। जागी तो देखा कि मैं सिरसे पाँवतक हीरे व जवाहिरोंसे लदी हूँ। उसके विशाल भवनके कलश आकाशसे बातें कर रहे थे। सारा भवन संगमर-मरसे बना हुआ, अमूल्य पत्थरोंसे जड़ा हुआ था! द्वारपर नौबत बज रही थी। उसके आनन्ददायक सुहावने शब्द आकाशमें गूँज रहे थे। द्वारपर मीलोंतक हरियाली छाई हुई थी। दासियाँ स्वर्णा-भूषणोंसे लदी हुई सुनहरे कपड़े पहने हुए चारों ओर दौड़ती थीं। ताराको देखते ही वे स्वर्णके लोटे और कटोरे लेकर दौड़ीं। तारा ने देखा कि मेरी पलङ्ग हाथी दाँतका है। भूमिपर बड़े कोमल बिछौने बिछे हुए हैं। सिरहानेकी ओर एक बड़ा सुन्दर ऊँचा शीशा रखा हुआ है। ताराने उसमें अपना रूप देखा, चकित

रह गयी। उसका सुन्दर रूप चन्द्रमाको भी लज्जित करता था। दीवारपर अनेकानेक सुप्रसिद्ध चित्रकारोंके मनमोहक चित्र टँगे थे। पर ये सब-के-सब ताराकी सुन्दरताके आगे तुच्छ थे। ताराको अपनी सुन्दरताका गर्व हुआ। वह कई दासियोंको लेकर वाटिकामें गयी। वहाँकी छटा देखकर वह मुग्ध हो गयी। वायुमें गुलाब और केसर घुले हुए थे, रङ्ग-विरङ्गके पुष्प, वायुके मन्द-मन्द झोंकोंसे मतवालोंकी तरह झूम रहे थे। ताराने एक गुलाबका फूल तोड़ लिया और उसके रङ्ग और कोमलताकी अपने अधर-पल्लवसे समानता करने लगी। गुलाबमें वह कोमलता न थी। वाटिकाके मध्यमें एक बिल्लौर-जटित हौज था। इसमें हंस और बत्तख किलोलें कर रहे थे। यकायक ताराको ध्यान आया, मेरे घरके लोग कहाँ हैं। दासियोंसे पूछा। उन्होंने कहा—"वे लोग पुराने घरमें हैं।" ताराने अपनी अटारीपर जाकर देखा। उसे अपना पहला घर एक साधारण झोंपड़ेकी तरह दृष्टिगोचर हुआ। उसकी बहिनें उसकी साधारण दासियोंके समान भी न थीं। मांको देखा, वह आँगनमें बैठी चरखा कात रही थी। तारा पहले सोचा करती थी कि जब मेरे दिन चमकेंगे तब मैं इन लोगोंको भी अपने साथ रखूँगी और उनकी भलीभाँति सेवा करूँगी। पर, इस समय धनके गर्वने उसकी पवित्र हार्दिक इच्छाको निर्बल बना दिया था। उसने घरवालोंको स्नेहरहित दृष्टिसे देखा और तब वह उन मनोहर गानको सुनने चली गयी जिसकी प्रतिध्वनि उसके कानोंमें आ रही थी।

एक बारगी जोरसे एक कड़का हुआ: बिजली चमकी और

बिजलीकी छटाओंसे एक ज्योतिस्वरूप नवयुवक निकलकर तारा-के सामने नम्रतासे खड़ा हो गया। ताराने पूछा, तुम कौन हो?

नवयुवकने कहा—श्रीमती, मुझे विद्युतसिंह कहते हैं। मैं श्रीमतीका आज्ञाकारी सेवक हूँ।

उसके विदा होते ही वायुके उष्ण झोंके चलने लगे। आकाश में एक प्रकाश दृष्टिगोचर हुआ। वह क्षणमात्रमें उतरकर तारा-कुंवरिके समीप ठहर गया। उसमेंसे एक ज्वालारूपी मनुष्यने निकलकर ताराके पदोंको चूमा। ताराने पूछा—तुम कौन हो?

उस मनुष्यने उत्तर दिया—श्रीमती, मेरा नाम अग्निसिंह। मैं श्रीमतीका आज्ञाकारी हूँ।

वह अभी जाने भी न पाया था कि एकबारगी सारा महल ज्योतिसे प्रकाशमान हो गया। जान पड़ता था, सैकड़ों बिजलियाँ मिलकर चमक रही हैं। वायु सवेग हो गयी। एक जगमगाता हुआ सिंहासन आकाशपर दीख पड़ा। वह शीघ्रतासे पृथ्वीकी ओर चला और ताराकुँवरिके पास आकर ठहर गया। उससे एक प्रकाशमय रूपका बालक, जिसके रूपसे गम्भीरता प्रकट होती थी, निकलकर ताराके सामने शिष्टाभावसे खड़ा हो गया। ताराने पूछा—तुम कौन हो?

बालकने उत्तर दिया—श्रीमती! मुझे मिस्टर रेडियम कहते हैं। मैं श्रीमतीका आज्ञापालक हूँ।

[३]

धनी लोग ताराके भयसे थर्राने लगे। उसके आश्चर्यजनक सौन्दर्यने संसारको चकित कर दिया। बड़े-बड़े महीपति उसकी

चौखटपर माथा रगड़ने लगे। जिसकी ओर उसकी कृपा दृष्टि हो जाती, वह अपना अहोभाग्य समझता। सदैवके लिये उसका बेदामका गुलाम बन जाता।

एक दिन तारा अपनी आनन्द-वाटिकामें टहल रही थी। अचानक किसीके गानेका मनोहर शब्द सुनाई दिया। तारा विक्षिप्त हो गयी। उसके दरबारमें संसारके अच्छे-अच्छे गवैये मौजूद थे, पर वह चित्ताकर्षकता, जो इन सुरोंमें थी, कभी अवगत न हुई थी। ताराने गायकको बुला भेजा।

एक क्षणके अनन्तर बाटिकामें एक साधु आया, सिरपर जटायें शरीरमें भस्म रमाये। उसके साथ एक टूटा हुआ बीन था। उसीसे वह प्रभावशाली स्वर निकलता था जो हृदयके अनुरक्त स्वरोंसे कहीं प्रिय था। साधु आकर हौजके किनारे बैठ गया। उसने ताराके सामने शिष्टभाव नहीं दिखाया। आश्चर्यसे इधर-उधर दृष्टि नहीं डाली। उस रमणीय स्थानपर वह अपना सुर-अलापने लगा। ताराका चित्त विचलित हो उठा। दिलमें अपार अनुरागका सञ्चार हुआ। मदमत्त होकर टहलने लगी। साधुके सुमनोहर मधुर अलापसे पक्षी मग्न हो गये। पानीमें लहरें उठने लगीं। वृक्ष झूमने लगे। ताराने उन चित्ताकर्षक सुरोंसे एक चित्र खिंचते हुए देखा। धीरे-धीरे चित्र प्रकट होने लगा। उसमें स्फूर्त्ति आयी। और तब, वह खड़ी होकर नृत्य करने लगी। तारा चौंक पड़ी। उसने देखा कि यह मेरा ही चित्र है। नहीं, मैं ही हूँ। मैं ही बीनकी तानपर नृत्य कर रही हूँ। उसे आश्चर्य हुआ कि मैं संसारकी अलभ्य वस्तुओंकी रानी हूँ अथवा एक स्वर-चित्र! वह सिर धुनने लगी और मतवाली होकर

साधुके पैरोंसे जा लगी। उसकी दृष्टिमें एक आश्चर्य्यजनक परिवर्त्तन हो गया। सामनेके फले-फूले वृक्ष और तरंगें मारता हुआ हौज, और मनोहर कुञ्ज सब लोप हो गये। केवल वही साधु बैठा बीन बजा रहा था, और वह स्वयं उसकी तालोंपर थिरक रही थी। वह साधु अब प्रकाशमय तारा और अलौकिक सौन्दर्यकी मूर्त्ति बन गया था। जब मधुर अलाप बन्द हुआ तब तारा होशमें आयी। उसका चित्त हाथसे जा चुका था। वह उस विलक्षण साधुके हाथों बिक चुकी थी।

तारा बोली—स्वामीजी! यह महल, यह धन, यह सुख और सौन्दर्य सब आपके चरण-कमलपर निछावर है। इस अन्धेरे महलको अपने कोमल चरणोंसे प्रकाशमान कीजिये।

साधु—साधुओंको महल और धनका क्या काम? मैं इस घरमें नहीं ठहर सकता।

तारा—संसारके सारे सुख आपके लिये उपस्थित हैं।

साधु—मुझे सुखोंकी कामना नहीं।

तारा—मैं आजीवन आपकी दासी रहूँगी। यह कहकर ताराने आइनेमें अपने अलौकिक सौन्दर्यकी छटा देखी और उसके नेत्रोंमें चञ्चलता आ गयी।

साधु—नहीं तारा कुंवरि, मैं इस योग्य नहीं हूँ। यह कहकर साधुने बीन उठाया और द्वारकी ओर चला। ताराका गर्व टूक-टूक हो गया। लज्जासे सिर झुक गया। वह मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़ी। मनमें सोचा—मैं धनमें, ऐश्वर्य्यमें, सौन्दर्यमें जो अपनी समता नहीं रखती, एक साधुकी दृष्टिमें इतनी तुच्छ!!

[४]

ताराको अब किसी प्रकार चैन नहीं था। उसे अपना भवन और ऐश्वर्य भयानक मालूम होने लगा। बस, साधुका एक चन्द्रस्वरूप उसकी आँखोंमें नाच रहा था और उसका स्वर्गीय गान कानोंमें गूँज रहा था। उसने अपने गुप्तचरोंको बुलाया और साधुका पता लगानेकी आज्ञा दी। बहुत छानबीनके पश्चात् उसकी कुटीका पता लगा। तारा नित्यप्रति वायुयानपर बैठकर साधुके पास जाती; कभी उसपर लाल, जवाहिर लुटाती, कभी रत्न और आभूषणकी छटा दिखाती। पर साधु इससे तनिक भी विचलित न हुआ। ताराके मायाजालका उसपर कुछ भी असर न हुआ।

तब, ताराकुँवरि फिर दुर्गाके मन्दिरमें गयी और देवीके चरणोंपर सिर रखकर बोली—माता, तुमने मुझे संसारके सारे दुर्लभ पदार्थ प्रदान किये। मैंने समझा था कि ऐश्वर्य्यमें संसार को दास बना लेनेकी शक्ति है, पर मुझे अब ज्ञात हुआ कि प्रेमपर ऐश्वर्य्य, सौन्दर्य और वैभवका कुछ भी अधिकार नहीं। अब एक बार मुझपर फिर वही कृपादृष्टि हो। कुछ ऐसा कीजिये कि जिस निष्ठुरके प्रेममें मैं मरी जा रही हूँ उसे भी मुझे देखे बिना चैन न आवे। उसकी आँखोंमें भी नींद हराम हो जाय, वह भी मेरे प्रेम-मदमें चूर हो जाय।

देवीके होंठ खुले, वह मुस्कराई। उसके अधर-पल्लव विकसित हुए। बोली सुनाई दी—तारा, मैं संसारके सारे पदार्थ प्रदान कर सकती हूँ, पर स्वर्ग-सुख मेरी शक्तिसे बाहर है। 'प्रेम' स्वर्गसुखका मूल है।

तारा—माता, संसारके सारे ऐश्वर्य मुझे जंजाल जान पड़ते हैं। बताइये, मैं अपने प्रीतमको कैसे पाऊँगी ?

देवी—उसका एक ही मार्ग है, पर है वह बहुत कठिन। भला, तुम उसपर चल सकोगी ?

तारा—वह कितना ही कठिन हो, मैं उस मार्गका अवलम्बन अवश्य करूँगी।

देवी—अच्छा, तो सुनो वह सेवा-मार्ग है। सेवा करो, प्रेम सेवाहीसे मिल सकता है।

[५]

ताराने अपने बहुमूल्य जड़ाऊ आभूषणों और रंगीन वस्त्रोंको उतार दिया। दासियोंसे विदा हुई। राजभवनको त्याग दिया। अकेले नंगे पैर साधुकी कुटीमें चली आयी और सेवामार्गका अवलम्बन किया।

वह कुछ रात रहे उठती। कुटीमें झाड़ू देती। साधुके लिये गंगासे जल लाती। जंगलोंसे पुष्प चुनती। साधु नींदमें होते तो वह उन्हें पंखा झलती। जंगली फल तोड़ लाती और केलेके पत्तल बनाकर साधुके सम्मुख रखती। साधु नदीमें स्नान करने जाया करते थे। तारा रास्तेसे कंकर चुनती। उसने कुटीके चारो ओर पुष्प लगाये। गंगासे पानी लाकर सींचती। उन्हें हरा-भरा देखकर प्रसन्न होती। उसने मदारकी रूई बटोरी, साधुके लिये नर्म गद्दे तैयार किये। अब और कोई कामना न थी! सेवा स्वयं अपना पुरस्कार और फल थी।

ताराको कई-कई दिन उपवास करना पड़ता। हाथोंमें गट्ठे

पड़ गये। पैर कांटोंसे चलनी हो गये। धूपसे कोमल गात मुरझा गया। गुलाब-सा बदन सूख गया, पर उसके हृदयमें अब स्वार्थ और गर्वका शासन न था। वहाँ अब प्रेमका राज था; वहाँ अब उस सेवाकी लगन थी—जिसमें कलुषताकी जगह आनन्दका स्रोत बहता है और काँटे पुष्प बन जाते हैं; जहाँ अश्रु-धाराकी जगह नेत्रोंसे अमृत-जलकी वर्षा होती और दुःख विलापकी जगह आनन्दके राग निकलते हैं, जहाँके पत्थर रूईसे ज्यादा कोमल हैं और शीतल वायुसे भी मनोहर। तारा भूल गयी कि मैं सौन्दर्यमें अद्वितीय हूँ। धन-विलासिनी तारा अब केवल प्रेमकी दासी थी।

साधुको वनके खगों और मृगोंसे प्रेम था। वे कुटीके पास एकत्रित हो जाते! तारा उन्हें पानी पिलाती, दाने चुगाती, गोद; में लेकर उनका दुलार करती। विषधर सांप और भयानक जन्तु उसके प्रेमके प्रभावसे उसके सेवक हो गये।

बहुधा रोगी मनुष्य साधुके पास आशीर्वाद लेने आते थे। तारा रोगियोंकी सेवा, सुश्रूषा करती, जंगलसे जड़ी-बूटियाँ ढूँढ़ लाती, उनके लिये औषधि बनाती, उनके घाव धोती, घावोंपर मरहम रखती, रात-रातभर बैठी उन्हें पंखा झलती। साधुके आशीर्वादको उसकी सेवा प्रभावयुक्त बना देती थी।

इस प्रकार कितने ही वर्ष बीत गये। गर्मीके दिन थे, पृथ्वी तवेकी तरह जल रही थी। हरे-भरे वृक्ष सूखे जाते थे। गंगा गर्मी से सिमट गयी थी! ताराको पानी लेनेके लिये बहुत दूर रेतमें चलना पड़ता। उसका कोमल अङ्ग चूर-चूर हो जाता। जलती हुई रेतमें तलवे भुन जाते। इसी दशामें एक दिन वह हताश

होकर एक वृक्षके नीचे क्षणभर दम लेनेके लिये बैठ गयी। उसके नेत्र बन्द हो गये। उसने देखा, देवी मेरे सम्मुख खड़ी, कृपा दृष्टिसे, मुझे देख रही हैं। ताराने दौड़कर उनके पदोंको चूमा।

देवीने पूछा—तारा, तेरी अभिलाषा पूरी हुई ?

तारा—हाँ माता, मेरी अभिलाषा पूरी हुई।

देवी—तुझे प्रेम मिल गया ?

तारा—नहीं माता, मुझे उससे भी उत्तम पदार्थ मिल गया। मुझे प्रेमके हीरेके बदले सेवाका पारस मिल गया। मुझे ज्ञात हुआ है कि प्रेम सेवाका चाकर है। सेवाके सामने सिर झुकाकर अब मैं प्रेम भिक्षा नहीं चाहती। अब मुझे किसी दूसरे सुखकी अभिलाषा नहीं। सेवाने मुझे प्रेम, आदर, सुख, सबसे निवृत्त कर दिया।

देवी इस बार मुस्कराई नहीं। उसने ताराको हृदयमे लगाया और दृष्टिसे ओझल हो गयी।

[६]

संध्याका समय था। आकाशमें तारे ऐसे चमकते थे जैसे कमलपर पानीकी बूँदें। वायुमें चित्ताकर्षक शीतलता आ गयी थी। तारा एक वृक्षके नीचे खड़ी चिड़ियोंको दाना चुगाती थी, कि यकायक साधुने आकर उसके चरणोंपर सिर झुकाया और बोला—तारा, तुमने मुझे जीत लिया। तुम्हारा ऐश्वर्य, धन और सौन्दर्य जो कुछ न कर सका, वह तुम्हारी सेवाने कर दिखाया। तुमने मुझे अपने प्रेममें आसक्त कर लिया। अब मैं तुम्हारा दास हूँ। बोलो, तुम मुझसे क्या चाहती हो ? तुम्हारे संकेतपर अब

मैं अपना योग और वैराग्य सब कुछ न्यौछावर कर देनेके लिये प्रस्तुत हूँ।

तारा—स्वामीजी! मुझे अब कोई इच्छा नहीं। मैं केवल सेवाकी आज्ञा चाहती हूँ।

साधु—मैं दिखा दूँगा कि ऐसे योग साधकर भी मनुष्यका हृदय निर्जीव नहीं होता। मैं भँवरेके सदृश तुम्हारे सौन्दर्यपर मंडलाऊँगा। पपीहेकी तरह तुम्हारे प्रेमकी रट लगाऊँगा। हम दोनों प्रेमकी नौकापर ऐश्वर्य और वैभव नदीकी सैर करेंगे, प्रेम कुजोंमें बैठकर प्रेमचर्चा करेंगे और आनन्दके मनोहर राग गावेंगे।

ताराने कहा—स्वामीजी सेवामार्गपर चलकर मैं अब अभिलाषाओंसे पूरी हो गयी। अब हृदयमें और कोई इच्छा शेष नहीं है!

साधुने इन शब्दोंको सुना; ताराके चरणोंपर माथा नवाया और गंगाकी ओर चल दिया।

शिकारी राजकुमार—

[१]

मईका महीना और मध्याह्नका समय था। सूर्य्यकी आँखें सामनेसे हटकर सिरपर जा पहुँची थीं। इसलिये उनमें शील न

था। ऐसा विदित होता था मानों पृथ्वी उनके भयसे थर-थर काँप रही थी। ठीक ऐसे ही समय एक मनुष्य एक हिरनके पीछे उन्मत्त भावसे घोड़ा फेंके चला आता था। उसका मुँह लाल हो रहा था और घोड़ा पसीनेसे लथ-पथ। किन्तु मृग भी ऐसा भागता था मानों वायुवेगसे जा रहा था। ऐसा प्रतीत होता था कि उसके पद भूमिको स्पर्श नहीं करते। इसी दौड़की जीत-हारपर उसका जीवन निर्भर था।

पछुआ हवा बड़े जोरसे चल रही थी। ऐसा जान पड़ता था मानों अग्नि और धूलकी वर्षा हो रही हो। घोड़ेके नेत्र रक्तवर्ण हो रहे थे और अश्वारोहीके सारे शरीरका रुधिर उबल-सा रहा था। किन्तु, मृगका भागना उसे इस बातका अवसर न देता था कि वह अपनी बन्दूकको सम्हाले। कितने ही ऊखके खेत, ढाकके बन और पहाड़ सामने पड़े और तुरन्त ही सपनेकी सम्पत्तिकी भाँति अदृश्य हो गये।

क्रमशः मृग और अश्वारोहीके बीच अधिक अन्तर होता जाता था कि अचानक मृग पीछेकी ओर मुड़ा। सामने एक नदीका बड़ा ही ऊँचा करारा दीवारकी भाँति खड़ा था। आगे भागनेकी राह बन्द थी और उसपरसे कूदना मानो मृत्युके मुखमें कूदना था। हिरनका शरीर शिथिल पड़ गया। उसने एक करुणा-भरी दृष्टि चारों ओर फेरी। किन्तु, उसे हर तरफ मृत्यु-ही-मृत्यु दृष्टिगोचर होती थी। अश्वारोहीके लिये इतना समय बहुत था। उसकी बन्दूकसे गोली क्या छूटी मानों मृत्युने एक महा भयंकर जय-ध्वनिके साथ अग्निकी एक प्रचण्ड ज्वाला उगल दी। हिरन भूमिपर लोट गया।

[२]

मृग पृथ्वीपर पड़ा तड़प रहा था और अश्वारोहीकी भयङ्कर और हिंसाप्रिय आँखोंसे प्रसन्नताकी ज्योति निकल रही थी। ऐसा जान पड़ता था कि उसने असाध्य साधन कर लिया। उसने उस पशुके शवको नापनेके बाद उसके सींगोंको बड़े ध्यानसे देखा और मन-ही-मन प्रसन्न हो रहा था कि इससे कमरेकी सजावट दूनी हो जायगी और नेत्र सर्वदा उस सजावटका आनन्द सुखसे भोगेंगे।

जबतक वह इस ध्यानमें मग्न था, उसको सूर्य्यकी प्रचण्ड किरणोंका लेशमात्र भी ध्यान न था, किन्तु ज्योंही उसका ध्यान उधरसे फिरा वह उष्णतासे विह्वल हो उठा और करुणापूर्ण आँखें नदीकी ओर डालीं, लेकिन वहाँ तक पहुँचनेका कोई भी मार्ग न देख पड़ा और न कोई वृक्ष ही देख पड़ा, जिसकी छांहमें वह जरा विश्राम करता।

इसी चिंतावस्थामें एक अति दीर्घकाय पुरुष नीचेसे उछलकर करारेके ऊपर आया और अश्वारोहीके सम्मुख खड़ा हो गया। अश्वारोही उसको देखकर बहुत ही अचंभित हुआ। नवागन्तुक एक बहुत ही सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट मनुष्य था।। मुखके भाव उसके हृदयकी स्वच्छता और चरित्रकी निर्मलताका पता देते थे। वह बहुत ही दृढ़-प्रतिज्ञ, आशा निराशा तथा भयसे बिल्कुल बेपरवाह-सा जान पड़ता था।

मृगको देखकर उस संन्यासीने बड़े स्वाधीनभावसे कहा—राजकुमार, तुम्हें आज बहुत ही अच्छा शिकार हाथ लगा। इतना बड़ा मृग इस सीमामें कदाचित् ही दिखाई पड़ता है।

राजकुमारके अचम्भेकी सीमा न रही, उसने देखा कि साधु उसे पहचानता है।

राजकुमार बोला--जी हाँ! मैं भी यही खयाल करता हूँ। मैंने भी आजतक इतना बड़ा हिरन नहीं देखा। लेकिन इसके पीछे मुझे आज बहुत हैरान होना पड़ा।

संन्यासीने दयापूर्वक कहा—निःसन्देह तुम्हें दुःख उठाना पड़ा होगा। तुम्हारा मुख लाल हो रहा है और घोड़ा भी बेदम हो गया है। क्या तुम्हारे संगी बहुत पीछे रह गये?

इसका उत्तर राजकुमारने बिल्कुल बे परवाहीसे दिया, मानों उसे इसकी कुछ भी चिन्ता न थी!

संन्यासीने कहा—यहाँ ऐसी कड़ी धूप और आँधीमें खड़े तुम कबतक उनकी राह देखोगे? मेरी कुटीमें चलकर जरा विश्राम कर लो। तुम्हें परमात्माने ऐश्वर्य देया है, लेकिन कुछ देरके लिये संन्यासाश्रमका रंग भी देखो और वनस्पतियों और नदीके शीतल जलका स्वाद लो।

यह कहकर संन्यासीने उस मृगके रक्तमय मृत शरीरको ऐसी सुगमतासे उठाकर कन्धेपर धर लिया मानों वह एक घासका गट्ठा था और राजकुमारसे कहा—मैं तो प्रायः करारसे ही नीचे उतर जाया करता हूँ। किन्तु तुम्हारा घोड़ा सम्भव है न उतर सके। अतएव 'एक दिनकी राह छोड़कर ६ मासकी राह' चलेंगे। घाट यहाँसे थोड़ी ही दूर है और वहीं मेरी कुटी है।

राजकुमर संन्यासीके पीछा चला। उसे संन्यासीके शारीरिक बलपर अचम्भा हो रहा था। आध घण्टेतक दोनों चुप-चाप चलते रहे। इसके बाद ढालू भूमि मिलनी शुरू हुई और थोड़ी

ही देरमें घाट आ पहुँचा। वहीं कदम्ब-कुंजकी घनी छायामें जहाँ सर्वदा मृगोंकी सभा सुशोभित रहती, नदीकी तरगोंका मधुर स्वर सर्वदा सुनाई दिया करता है, जहाँ हरियालीपर मयूर थिरकते, कपोतादि पक्षी मस्त होकर झूमते, लता द्रुमादिसे सुशोभित संन्यासीकी एक छोटी-सी कुटी थी।

[३]

संन्यासीकी कुटी हरे-भरे वृक्षोंके नीचे सरलता और संतोषका चित्र बन रही थी। राजकुमारकी अवस्था वहाँ पहुँचते ही बदल गयी। वहाँ शीतल वायुका प्रभाव उसपर ऐसा पड़ा जैसा मुरझाते हुए वृक्षपर वर्षाका। उसे आज विदित हुआ कि तृप्ति कुछ स्वादिष्ट व्यंजनोंही पर निर्भर नहीं है और न निद्रा सुनहरे तकियोंकी ही आवश्यकता रखती है।

शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु चल रही थी। सूर्य्य भगवान अस्ताचलको पयान करते हुए इस लोकको तृषित नेत्रोंसे देखते जाते थे और संन्यासी एक वृक्षके नीचे बैठा हुआ गा रहा था—

"ऊधो कर्मन की गति न्यारी"

राजकुमारके कानोंमें स्वरकी भनक पड़ी, उठ बैठा और सुनने लगा। उसने बड़े-बड़े कलावन्तोंके गाने सुने थे, किन्तु आज जैसा आनन्द उसे कभी प्राप्त नहीं हुआ था। इस पदने उसके ऊपर मानों मोहनीमन्त्रका जाल बिछा दिया। वह बिल्कुल बेसुध हो गया। संन्यासीकी ध्वनिमें कोयलकी कूक सरीखी मधुरता थी।

सम्मुख नदीका जल गुलाबी चादरकी भाँति प्रतीत होता

था। कूलद्वयको रेत चन्दनकी चौकी-सी दीखती थी। राजकुमार को यह दृश्य स्वर्गीय-सा जान पड़ने लगा। उसपर तैरनेवाले जल-जन्तु ज्योतिर्मय आत्माके सदृश देख पड़ते थे, जो गानेका आनन्द उठाकर मत्तसे हो गये।

जब गाना समाप्त हो गया, राजकुमार जाकर संन्यासीके सामने बैठ गया और भक्ति-पूर्वक बोला--महात्मन्; आपका प्रेम और वैराग्य सराहनीय है। मेरे हृदयपर इसका जो प्रभाव पड़ा है वह चिरस्थायी रहेगा। यद्यपि सम्मुख प्रशंसा करना सर्वथा अनुचित है, किन्तु इतना मैं अवश्य कहूँगा कि आपके प्रेमकी गम्भीरता सराहनीय है। यदि मैं गृहस्थीके बन्धनमें न पड़ा होता तो आपके चरणोंसे पृथक् होनेका ध्यान स्वप्नमें भी न करता।

इसी अनुरागावस्थामें राजकुमार कितनी ही बातें कह गया, जो कि स्पष्ट रूपसे उसके आन्तरिक भावोंका विरोध करती थीं। संन्यासी मुस्कराकर बोला--तुम्हारी बातोंसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ और मेरी उत्कट इच्छा है कि तुमको कुछ ठहराऊँ, किन्तु यदि मैं जाने भी दूँ तो इस सूर्यास्तके समय तुम जा नहीं सकते। तुम्हारा रोवां पहुँचना दुष्कर हो जायगा। तुम जैसे आखेटप्रिय हो वैसा ही मैं भी हूँ। हम दोनोंको अपने-अपने गुण दिखानेका अच्छा अवसर प्राप्त हुआ है। कदाचित् तुम भयसे न रुकते, किन्तु शिकारके लालचसे अवश्य रहोगे।

राजकुमारको तुरन्त ही मालूम हो गया कि जो बातें उन्होंने अभी-अभी संन्यासीसे कही थीं वे बिल्कुल ही ऊपरी और दिखावे की थीं और हार्दिक भाव उनसे प्रकट नहीं हुए थे। आजन्म संन्यासीके समीप रहना तो दूर, वहां एक रात बिताना उसको

कठिन जान पड़ने लगा। घरवाले उद्विग्न हो जायँगे और मालूम नहीं क्या सोचेंगे। साथियोंकी जान संकटमें होगी। घोड़ा बेदम हो रहा है। उसपर ४० मील जाना बहुत ही कठिन और बड़े साहसका काम है। लेकिन यह महात्मा शिकार खेलते हैं यह बड़ी अजीव बात है। कदाचित् यह वेदान्ती हैं, ऐसे वेदान्ती जो जीवन और मृत्यु मनुष्यके हाथ नहीं मानते। इनके साथ शिकारमें बड़ा आनन्द आवेगा।

यह सब सोच-विचारकर उन्होंने संन्यासीका आतिथ्य स्वीकार किया, उन्हें धन्यवाद दिया और अपने भाग्यकी प्रशंसा की, जिसने उन्हे कुछ काल तक और साधु-संगसे लाभ उठानेका अवसर दिया।

[४]

रात दस बजेका समय था। घनी अँधियारी छाई हुई थी। संन्यासीने कहा—अब हमारे चलनेका समय हो गया है।

राजकुमार पहलेहीसे प्रस्तुत था। बन्दूक कन्धेपर रख बोला—इस अन्धकारमें शूकर अधिकतासे मिलेंगे। किन्तु, ये पशु बड़े भयानक हैं।

संन्यासीने एक मोटा सोटा हाथमें लिया और कहा—कदाचित् इससे भी अच्छे शिकार हाथ आवें। मैं जब अकेला जाता हूँ, कभी खाली नहीं लौटता। आज तो हम दो हैं।

दोनों शिकारी नदीके तटपर नालों और रेतके टीलोंको पार करते और झाड़ियोंसे अटकते चुपचाप चले जा रहे थे। एक ओर श्यामवर्ण नदी थी, जिसमें नक्षत्रोंका प्रतिबिम्ब नाचता

दिखाई देता था और लहरें गान कर रही थीं। दूसरी ओर घन-घोर अन्धकार जिसमें कभी-कभी केवल खद्योतोंके चमकनेसे एक क्षण-स्थायी प्रकाश फैल जाता था। मालूम होता था कि वे भी अन्धेरेमें निकलनेसे डरते हैं।

ऐसी अवस्थामें कोई एक घण्टा चलनेके बाद वह एक ऐसे स्थानपर पहुँचे, जहाँ एक ऊँचे टीलेपर घने वृक्षोंके नीचे आग जलती दिखाई पड़ी। उस समय इन लोगोंको मालूम हुआ कि संसारके अतिरिक्त और भी कई वस्तुएँ हैं।

संन्यासीने ठहरनेका संकेत किया। दोनों एक पेड़की ओटमें खड़े होकर ध्यानपूर्वक देखने लगे। राजकुमारने बन्दूक भर ली। टीलेपर एक बड़ा छायादार वट-वृक्ष भी था। उसीके नीचे अन्धकारमें १०-१२ मनुष्य अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित मिर्जई पहिने चरसका दम लगा रहे थे। इनमेंसे प्रायः सभी लम्बे थे। सभीके सीने चौड़े और सभी हृष्ट-पुष्ट। मालूम होता था कि सैनिकोंका एक दल विश्राम कर रहा है।

राजकुमारने पूछा--यह लोग शिकारी हैं? संन्यासीने धीरेसे कहा—बड़े शिकारी है। ये राह चलते यात्रियों शिकार का करते हैं। ये बड़े भयानक हिंस्र पशु हैं। इनके अत्याचारोंसे गाँवके गांव बर्बाद हो गये और जितनोंको इन्होंने मारा है उनका हिसाब परमात्मा ही जानता है। यदि आपको शिकार करना हो तो इनका शिकार कीजिये। ऐसा शिकार आप बहुत प्रयत्न करने पर भी नहीं पा सकते। यही पशु हैं जिनपर आपको शस्त्रोंका प्रहार करना उचित है। राजाओं और अधिकारियोंके शिकार यही हैं। इससे आपका नाम और यश फैलेगा।

[५]

राजकुमारके जीमें आया कि दो-एकको मार डालें। किन्तु संन्यासीने रोका और कहा—इन्हें छेड़ना ठीक नहीं। अगर यह कुछ उपद्रव न करें, तो भी, बचकर निकल जायँगे। आगे चलो, सम्भव है कि, इससे अच्छे शिकार हाथ आवें।

तिथि सप्तमी थी। चन्द्रमा भी उदय हो आया। इन लोगोंने नदीका किनारा छोड़ दिया था। जंगल भी पीछे रह गया था। सामने एक कच्ची सड़क दिखाई पड़ी और थोड़ी देरमें कुछ बस्ती भी देख पड़ने लगी। संन्यासी एक विशाल प्रासादके सामने आकर रुक गये और राजकुमारसे बोले—आओ, इस मौलसरीके वृक्षपर बैठें। परन्तु देखो, बोलना मत। नहीं तो दोनोंकी जानके लाले पड़ जायँगे। इसमें एक बड़ा भयानक हिंस्र जीव रहता है जिसने अनगिनत जीवधारियोंका बध किया है। कदाचित् हम लोग आज इसको संसारसे मुक्त कर दें!

राजकुमार बहुत प्रसन्न हुआ और सोचने लगा—चलो, रातभर की दौड़ तो सफल हुई। दोनों मौलसरीपर चढ़कर बैठ गये। राजकुमारने अपनी बन्दूक संभाल ली और शिकारकी, जिसे वह तेन्दुआ समझे हुए था, बाट देखने लगा।

रात आधीसे अधिक व्यतीत हो चुकी थी। यकायक महलके समीप कुछ हलचल मालूम हुई और बैठकके द्वार खुल गये। मोमबत्तियोंके जलनेसे सारा हाता प्रकाशमान हो गया। कमरेके हर कोनेमें सुखकी सामग्री दिखाई दे रही थी। बीचमें एक हृष्ट-पुष्ट मनुष्य गलेमें रेशमी चादर डाले, माथेपर केसरका अर्ध-

लम्बाकार तिलक लगाये, मसनदके सहारे बैठा सुनहरी मुँह-नालसे लच्छेदार धुँआ फेंक रहा था। इतनेहीमें उन्होंने देखा कि नर्तकियोंके दल-के-दल चले आ रहे हैं। उनके हाव-भाव व कटाक्षके सर चलने लगे। समाजियोंने सुर मिलाया। गाना आरम्भ हुआ। और साथ-ही-साथ मद्यपान भी चलने लगा।

राजकुमारने अचम्भित होकर पूछा—यह तो कोई बहुत बड़ा रईस जान पड़ता है।

संन्यासीने उत्तर दिया—नहीं यह रईस नहीं है, एक बड़े मन्दिरके महन्त हैं, साधु हैं। संसारका त्याग कर चुके हैं। सांसारिक वस्तुओंकी ओर आँख नहीं उठाते, पूर्ण ब्रह्म ज्ञानकी बातें करते हैं। यह सब सामान इनकी आत्माकी प्रसन्नताके लिए हैं। इन्द्रियोंको वश किये हुए इन्हें बहुत दिन हुए। सहस्रों सीधे-सादे मनुष्य इनपर विश्वास करते हैं। इनको अपना देवता समझते हैं। यदि आप शिकार करना चाहते हैं तो इनका कीजिये। यही राजाओं और अधिकारियोंके शिकार हैं। ऐसे रंगे हुए सियारोंसे संसारको मुक्त करना आपका परम धर्म्म है। इसमे आपकी प्रजाका हित होगा तथा आपका नाम और यश फैलेगा।

दोनों शिकारी नीचे उतरे। संन्यासीने कहा—अब रात अधिक बीत चुकी है। तुम बहुत थक गये होगे। किन्तु राज-कुमारोंके साथ आखेट करनेका अवसर मुझे बहुत कम प्राप्त होता है। अतएव एक शिकारका पता और लगाकर तब लौटेंगे।

राजकुमारको इन शिकारोंमें सच्चे उपदेशका सुख प्राप्त हो रहा था। बोला—स्वामीजी, थकनेका नाम न लीजिए। यदि मैं

वर्षों आपकी सेवामें रहता तो और न जाने कितने आखेट करना सीख जाता।

दोनों फिर आगे बढ़े। अब रास्ता स्वच्छ और चौड़ा था। हाँ, सड़क कदाचित् कच्ची ही थी। सड़कके दोनों ओर वृक्षोंकी पंक्तियाँ थीं। किसी-किसी आम्र वृक्षके नीचे रखवाले सो रहे थे। घंटे भर बाद दोनों शिकारियोंने एक ऐसी बस्तीमें प्रवेश किया, जहां कि सड़कों, लालटेनों और अट्टालिकाओंसे मालूम होता था कि बड़ा नगर है। संन्यासीजी एक विशाल भवनके सामने एक वृक्षके नीचे ठहर गये और राजकुमारसे बोले—यह सरकारी कचहरी है। यहाँ राज्यका एक बड़ा कर्मचारी रहता है। उसे सूबेदार कहते हैं। इसकी कचहरी दिनको भी लगती है और रातको भी। यहां न्याय सुवर्ण और रत्नादिकोंके मोल बिकता है। यहांकी न्यायप्रियता द्रव्यपर निर्भर है। धनवान दरिद्रोंको पैरों तले कुचलते हैं और उनकी गोहार कोई भी नहीं सुनता।

यही बातें हो रही थीं कि यकायक कोठेपर दो आदमी दिखलाई पड़े। दोनों शिकारी वृक्षकी ओटमें छिप गये। संन्यासीने कहा—शायद सूबेदार साहब कोई मामला तय कर रहे हैं।

ऊपरसे आवाज आयी, तुमने एक विधवा स्त्रीकी जायदाद ले ली है; मैं इसे भली-भांति जानता हूँ। यह कोई छोटा मामला नहीं है। इसमें एक सहस्रसे कमपर मैं बात-चीत करना नहीं चाहता।

राजकुमारमें इससे अधिक सुननेकी शक्ति न रही। क्रोधके मारे नेत्र लाल हो गये। यही जी चाहता था कि इस निर्दयीका

अभी बध कर दूं। किन्तु संन्यासीजीने रोका।' बोले—आज इस शिकारका समय नहीं है। यदि आप ढूंढ़ेंगे तो ऐसे शिकार बहुत मिलेंगे। मैंने इनके कुछ ठिकाने बतला दिये हैं। अब प्रातः काल होनेमें अधिक विलम्ब नहीं है। कुटी अभी यहांसे दस मील होगी। आइये, शीघ्र चलें।

[७]

दोनों शिकारी तीन बजते-बजते फिर कुटीमें लौट आये, उस समय बड़ी सुहावनी रात थी, शीतल समीरने हिला-हिलाकर वृक्षों और पत्तोंकी निद्रा भङ्ग करना आरम्भ कर दिया था।

आध घण्टेमें राजकुमार तैयार हो गये। संन्यासीमें अपना विश्वास और कृतज्ञता प्रकट करते हुए उनके चरणोंपर अपना मस्तक नवाया और घोड़ेपर सवार हो गये।

संन्यासीने उनकी पीठपर कृपापूर्वक हाथ फेरा। आशीर्वाद देकर बोले—राजकुमार! तुमसे भेंट होनेसे मेरा चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। परमात्माने तुम्हें अपनी सृष्टिपर राज करनेके हेतु जन्म दिया है। तुम्हारा धर्म है कि सदा प्रजा-पालक बनो। तुम्हें पशुओंका वध करना उचित नहीं। इन दीन पशुओंके वध करने में कोई बहादुरी नहीं, कोई साहस नहीं, सच्चा साहस और सच्ची बहादुरी दीनोंकी रक्षा और उनकी सहायता करनेमें विश्वास मानों, जो मनुष्य केवल चित्तविनोदार्थ जीवहिंसा करता है वह निर्दयी घातकसे भी कठोर-हृदय है। वह घातकके लिये जीविका है, किन्तु शिकारीके लिये केवल दिल बहलानेका एक सामान। तुम्हारे लिये ऐसे शिकारोंकी आवश्यकता है जिसमें तुम्हारी

प्रजाको सुख पहुँचे। निःशब्द पशुओंका वध न करके तुमको उन हिंसकोंके पीछे दौड़ना चाहिये जो धोखाधड़ीसे दूसरोंका वध करते हैं। ऐसे आखेट करो जिससे तुम्हारी आत्माको शान्ति मिले। तुम्हारी कीर्त्ति संसारमें फैले। तुम्हारा काम वध करना नहीं, जीवित रखना है। यदि वध करो तो केवल जीवित रखने के लिये। यही तुम्हारा धर्म है। जाओ, परमात्मा तुम्हारा कल्याण करें।

बलिदान--

[१]

मनुष्यकी आर्थिक अवस्थाका जबसे ज्यादा असर उसके नामपर पड़ता है। मौजे बेलाके मगरू ठाकुर सबसे कान्सटेबल हो गये हैं, उनका नाम मङ्गल सिंह हो गया है। अब उन्हें कोई मगरू कहनेका साहस नहीं कर सकता। कल्लू अहीरने जबसे हलकेके थानेदार साहबसे मित्रता कर ली है और गांवका मुखिया हो गया है, उसका नाम कालिकादीन हो गया है। अब उसे कल्लू कहे तो आँखें लाल-पीली करता है। इसी प्रकार हरखचन्द्र कुरमी अब हरखू हो गया है। आजसे बीस साल पहले उसके यहाँ शक्कर बनती थी, कई हलकी खेती होती थी और कारोबार खूब फैला हुआ था। लेकिन विदेशी शक्करकी आमदनीने उसे मटिया-

मेट कर दिया। धीरे-धीरे कारखाना टूट गया, जमीन टूट गयी, गाहक टूट गये और वह भी टूट गया। सत्तर वर्षका बूढ़ा, जो एक तकियेदार माचेपर बैठा हुआ नारियल पिया करता, अब सिरपर टोकरी लिये खाद फेकने जाता है। परन्तु उसके मुखपर अब भी एक प्रकारकी गम्भीरता, बातचीतमें अब भी एक प्रकारकी अकड़, चाल-ढालमें अब भी एक प्रकारका स्वाभिमान भरा हुआ है। इसपर कालकी गतिका प्रभाव नहीं पड़ा। रस्सी जल गयी, पर बल नहीं टूटा। भले दिन मनुष्यके चरित्रपर सदैवके लिये अपना चिह्न छोड़ जाते हैं। हरखूके पास अब केवल पाँच बीघा जमीन है, केवल दो बैल हैं। एक ही हलकी खेती होती है।

लेकिन पंचायतोंमें, आपसकी कलहमें, उसकी सम्पत्ति अब भी समान दृष्टिसे देखी जाती है। वह जो बात कहता है, बेलाग कहता है और गाँवके अनपढ़ उसके सामने मुँह नहीं खोल सकते!

हरखूने अपने जीवनमें कभी दवा नहीं खाई थी। वह बीमार जरूर पड़ता, कुआर मासमें मलेरियासे कभी न बचता था। लेकिन दस-पांच दिनमें वह बिना दवा खाये ही चङ्गा हो जाता था। इस वर्ष भी कार्तिकमें बीमार पड़ा और यह समझकर कि अच्छा तो हो ही जाऊँगा, उसने कुछ परवाह न की। परन्तु अबकी ज्वर मौतका परवाना लेकर चला था। एक सप्ताह बीता, दूसरा सप्ताह बीता, पूरा महीना बीत गया पर हरखू चारपाईसे न उठा। अब उसे दवाकी जरूरत मालूम हुई। उसका लड़का गिरधारी कभी नीमकी सीखें पिलाता, कभी गुर्चका सत, कभी गदा पूरनाकी जड़। पर इन औषधियोंसे कोई फायदा न होता था।

हरखूको विश्वास हो गया कि अब संसारसे चलनेके दिन आ गये।

एक दिन मङ्गलसिंह उसे देखने गये, बेचारा टूटी खाटपर पड़ा राम-नाम जप रहा था। मङ्गलसिंहने कहा—"बाबा, बिना दवा खाये अच्छा न होगे; कुनैन क्यों नहीं खाते?" हरखूने उदासीन भावसे कहा—तो लेते आना।

दूसरे दिन कालिकादीनने आकर कहा—बाबा, दो-चार दिन कोई दवा खा लो। अब तुम्हारी जवानीकी देह थोड़े है कि बिना दवा-दर्पणके अच्छे हो जाओगे।

हरखूने उसी मन्द भावसे कहा—"तो लेते आना।" लेकिन रोगीको देख आना एक बात है, दवा लाकर उसे देना दूसरी बात है। पहली बात शिष्टाचारसे होती है, दूसरी सच्ची समवेदना-से। न मंगलसिंहने खबर ली; न कालिकादीनने, न किसी तीसरे हीने। हरखू दालानमें खाटपर पड़ा रहता। मङ्गलसिंह कभी नजर आ जाते तो कहता—भैया, वह दवा नहीं लाये?

मङ्गलसिंह कतराकर निकल जाते। कालिकादीन दिखाई देते तो उनसे भी यही प्रश्न करता। लेकिन यह भी नजर बचा जाते। या तो उसे यह सूझता ही नहीं था कि दवा पैसोंके बिना नहीं आती, या वह पैसोंको जानसे भी प्रिय समझता था, अथवा वह जीवनसे निराश हो गया था। उसने कभी दवाके दामकी बात नहीं की। दवा न आयी। उसकी दशा निदोंदिन बिगड़ती गई। यहाँ तक कि पाँच महीने कष्ट भोगनेके बाद उसने ठीक होलीके दिन शरीर त्याग दिया। गिरधारीने उसका शव बड़ी धूमधामके साथ निकाला। क्रिया-कर्म्म बड़े हौसलेसे किया। कई गाँवके ब्राह्मणोंको निमन्त्रित किया।

बेलामें होली न मनाई गयी, न अबीर और न गुलाल उड़ी, न डफली बजी, न भङ्गकी नालियाँ बहीं। कुछ लोग मनमें हरखू-को कोसते जरूर थे कि इस बुड्ढेको आज ही मरना था; दो चार दिन बाद मरता।

लेकिन इतना निर्लज्ज कोई न था कि शोकमें आनन्द मनाता, वह शहर नहीं था, जहाँ कोई किसीके काममें शरीक नहीं होता, जहाँ पड़ोसीके रोने-पीटनेकी आवाज हमारे कानों तक नहीं पहुँचती।

[२]

हरखूके खेत गाँववालोंकी नजरपर चढ़े हुए थे। पाँचो बीघा जमीन कुएँके निकट खाद-पाँससे लदी हुई मेड़ बाँधसे ठीक थी। उनमें तीन-तीन फसलें पैदा होती थीं। हरखूके मरते ही उनपर चारों ओरसे धावे होने लगे। गिरधारी तो क्रिया-कर्म्ममें फँसा हुआ था। उधर गाँवके मनचले किसान लाला ओंकारनाथ-को चैन न लेने देते थे, नजरानेकी बड़ी बड़ी रकमें पेश हो रही थीं। कोई सालभरका लगान पेशगी देनेपर तैयार था, कोई नजरानेकी दूनी रकमका दस्तावेज लिखनेपर तुला हुआ था। लेकिन ओंकारनाथ सबको टालते रहते थे। उनका विचार था कि गिरधारीके बापने इन खेतोंको बीस वर्ष तक जोता है, इसलिये गिरधारीका हक सबसे ज्यादा है। वह अगर दूसरोंसे कम भी नजराना दे तो खेत उसीको देने चाहिये। अस्तु, जब गिरधारी क्रिया-कर्म्मसे निवृत्त हो गया और चैतका महीना भी समाप्त होने आया, तब जमींदार साहबने गिरधारी-

को बुलाया और उससे पूछा—खेतोंके बारेमें क्या कहते हो ?

गिरधारीने रोकर कहा—सरकार, इन्हीं खेतों हीका तो आसरा है, जोतूँगा नहीं तो क्या करूँगा।

ओंकारनाथ—नहीं, जरूर जोतो, खेत तुम्हारे हैं। मैं तुमसे छोड़नेको नहीं कहता। हरखूने उसे बीस सालतक जोता। उनपर तुम्हारा हक है। लेकिन तुम देखते हो अब जमीनकी दर कितनी बढ़ गयी है। तुम आठ रुपये बीघेपर जोतते थे, मुझे १०) मिल रहे हैं और नजरानेके सौ अलग। तुम्हारे साथ रिआयत करके लगान वही रखता हूँ, पर नजरानेके रुपये तुम्हें देने पड़ेंगे।

गिरधारी—सरकार, मेरे घरमें तो इस समय रोटियोंका भी ठिकाना नहीं है। इतने रुपये कहांसे लाऊँगा ? जो कुछ जमा-जथा थी, दादाके काममें उठ गयी। अनाज खलिहानमें है। लेकिन दादाके बीमार हो जानेसे उपज भी अच्छी नहीं हुई। रुपये कहांसे लाऊँ ?

ओंकारनाथ—यह सच है लेकिन मैं इससे ज्यादा रिआयत नहीं कर सकता।

गिरधारी—नहीं सरकार ! ऐसा न कहिये। नहीं तो हम बिना मारे मर जायँगे। आप बड़े होकर कहते हैं तो मैं बैल बछिया बेचकर पचास रुपया ला सकता हूँ। इससे बेशीकी हिम्मत मेरी नहीं पड़ती।

ओंकारनाथ चिढ़कर बोले—तुम समझते होगे कि हम ये रुपये लेकर अपने घरमें रख लेते हैं और चैनकी वंशी बजाते हैं। लेकिन हमारे ऊपर जो कुछ गुजरती है हमहीं जानते हैं। कहीं यह चन्दा, कहीं वह चन्दा ; कहीं यह नजर, कहीं वह नजर,

कहीं यह इनाम, कहीं वह इनाम। इनके मारे कचूमर निकल जाता है। बड़े दिनमें सैकड़ों रुपये डालियोंमें उड़ जाते हैं। जिसे डाली न दो वही मुँह फुलाता है। जिन चीजोंके लिए लड़के तरस कर रह जाते हैं उन्हें बाहरसे मँगाकर डालियोंमें सजाता हूँ। उसपर कभी कानूनगो आ गये, कभी तहसीलदार, कभी डिप्टी साहबका लश्कर आ गया। सब मेरे मेहमान होते हैं। अगर न करूँ तो नक्कू बनूँ और सबकी आँखोंमें काटा बन जाऊँ। सालमें हजार बारह सौ मोदीको इसी रसद खुराकके मदमें देने पड़ते हैं। यह सब कहाँसे आवें? बस, यह जी चाहता है कि छोड़कर निकल जाऊँ। लेकिन हमें तो परमात्माने इसीलिये बनाया है कि एकसे रुपया सताकर लें और दूसरेको रो रोकर दें, यही हमारा काम है। तुम्हारे साथ इतनी रिआयत कर रहा हूँ। लेकिन तुम इतनी रिआयतपर भी खुश नहीं होते तो हरि इच्छा। नजरानेमें एक पैसेकी भी रिआयत न होगी। अगर एक हफ्तेके अन्दर रुपये दाखिल करोगे तो खेत जोतने पाओगे नहीं तो नहीं, मैं कोई दूसरा प्रबन्ध कर दूँगा।

[३]

गिरधारी उदास और निराश होकर घर आया। १००) का प्रबन्ध करना उसके काबूके बाहर था। सोचने लगा, अगर दोनों बैल बेच दूँ तो खेत ही लेकर क्या करूँगा? घर बेचूँ तो वहाँ लेनेवाला ही कौन है? और फिर बाप-दादोंका नाम डूबता है। चार-पाँच पेड़ हैं, लेकिन उन्हें बेचकर २५) या ३०) से अधिक न मिलेंगे। उधार लूँ तो देता कौन है? अभी बनियेके ५०) सिरपर चढ़े हैं। वह एक पैसा भी न देगा। घरमें गहने भी

तो नहीं हैं। नहीं उन्हींको बेचता। ले-देकर एक हंसली बनवाई थी, वह भी बनियेके घर पड़ी हुई है। सालभर हो गया, छुड़ानेकी नौबत न आयी। गिरधारी और उसकी स्त्री सुभागी दोनों ही इसी चिन्तामें पड़े रहते, लेकिन कोई उपाय न सूझता था। गिरधारीको खाना-पीना अच्छा न लगता, रातको नींद न आती। खेतोंके निकलनेका ध्यान आते ही उसके हृदयमें हूक-सी उठने लगती। हाय! वह भूमि जिसे हमने वर्षों जोता, जिसे खादसे पाटा, जिसमें मेड़ें रक्खीं, जिसकी मेड़ें बनाईं उसका मजा अब दूसरा उठावेगा।

वे खेत गिरधारीके जीवनका अंश हो गये थे। उनकी एक-एक अंगुल भूमि उसके रक्तसे रँगी हुई थी। उनका एक एक परमाणु उसके पसीनेसे तर हो रहा था।

उनके नाम उसकी जिह्वापर उसी तरह आते थे जिस तरह अपने तीनों बच्चोंके। कोई चौबीसो था, कोई बाईसो था, कोई नालेवाला, कोई तलैयावाला। इन नामोंके स्मरण होते ही खेतोंका चित्र उसकी आँखोंके सामने खिंच जाता था। वह इन खेतोंकी चर्चा इस तरह करता मानों वे सजीव हैं। मानों उसके भले-बुरेके साथी हैं। उसके जीवनकी सारी आशायें, सारी इच्छायें; सारे मनसूबे, सारी मनकी मिठाइयाँ, सारे हवाई किले, इन्हीं खेतोंपर अवलम्बित थे। इनके बिना वह जीवनकी कल्पना ही नहीं कर सकता था और वे ही अब हाथसे निकले जाते हैं, वह घबराकर घरसे निकल जाता और घण्टों उन्हीं खेतोंकी मेड़ों पर बैठा हुआ रोता, मानों उनसे बिदा हो रहा है। इस तरह एक सप्ताह बीत गया और गिरधारी रुपयेका कोई बन्दोबस्त न

कर सका। आठवें दिन उसे मालूम हुआ कि कालिकादीनने १००) नजराने देकर १०) बीघेपर खेत ले लिये! गिरधारीने एक ठण्ढी साँस ली। एक क्षणके बाद वह अपने दादाका नाम लेकर बिलख-बिलखकर रोने लगा। उस दिन घरमें चूल्हा नहीं जला। ऐसा मालूम होता था मानों हरखू आज ही मरा है।

[४]

लेकिन सुभागी यों चुपचाप बैठनेवाली स्त्री न थी। वह क्रोधसे भरी हुई कालिकादीनके घर गयी और उसकी स्त्रीको खूब लथेड़ा, कलका बानी आजका सेठ, खेत जोतने चले हैं। देखें कौन मेरे खेतमें हल ले जाता है? अपना और उसका लोहू एक कर दूँ। पड़ोसियोंने उसका पक्ष लिया, सच तो है, आपसमें यह चढ़ा ऊपरी नहीं चाहिए। नारायणने धन दिया है, तो क्या गरीबोंको कुचलते फिरेंगे? सुभागीने समझा, मैंने मैदान मार लिया। उसका चित्त बहुत शान्त हो गया। किन्तु वही वायु जो पानीमें लहरें पैदा करती है, वृक्षोंको जड़से उखाड़ डालती है। सुभागी तो पड़ोसियोंकी पंचायतमें अपने दुखड़े रोती और कालिकादीनकी स्त्रीसे छेड़-छेड़ लड़ती। इधर गिरधारी अपने द्वारपर बैठा हुआ सोचता, अब मेरा क्या हाल होगा? अब यह जीवन कैसे कटेगा? ये लड़के किसके द्वारपर जायँगे? मजदूरी-का विचार करते ही उसका हृदय व्याकुल हो जाता। इतने दिनों तक स्वाधीनता और सम्मानका सुख भोगनेके बाद अधम चाकरी-की शरण लेनेके बदले वह मर जाना अच्छा समझता था। वह अब तक गृहस्थ था, उसकी गणना गाँवके भले आदमियोंमें थी,

उसे गाँवके मामलेमें बोलनेका अधिकार था। उसके घरमें धन न था। पर मान था। नाई, बढ़ई, कुम्हार, पुरोहित, भाट, चौकीदार ये सब उसका मुँह ताकते थे। अब यह मर्य्यादा कहाँ? अब कौन उसकी बात पूछेगा? कौन उसके द्वारपर आयेगा? अब उसे किसीके बराबर बैठनेका, किसीके बीचमें बोलनेका हक नहीं रहा। अब उसे पेटके लिये दूसरोंकी गुलामी करनी पड़ेगी। अब पहर रात रहे कौन बैलोंको नादमें लगावेगा। वह दिन अब कहाँ, जब गीत गा-गाकर हल चलाता था। चोटीका पसीना एँड़ी तक आता था, पर जरा भी थकावट न आती थी। अपने लह-लहाते हुए खेतोंको देखकर फूला न समाता था। खलिहानमें अनाजका ढेर सामने रक्खे हुए अपनेको राजा समझता था। अब अनाजके टोकरे भर-भरकर कौन लावेगा?

अब खत्ते कहाँ? बखार कहाँ? यही सोचते-सोचते गिरधारी-की आँखोंसे आँसूकी झड़ी लग जाती थी। गाँवके दो-चार सज्जन, जो कालिकादीनसे जलते थे, कभी-कभी गिरधारीको तसल्ली देने आया करते थे, पर वह उनसे भी खुलकर न बोलता। उसे मालूम होता था कि मैं सबकी नजरोंमें गिर गया हूँ।

अगर कोई समझाता कि तुमने क्रिया-कर्म्ममें व्यर्थ इतने रुपये उड़ा दिये, तो उसे बहुत दुःख होता। वह अपने उस कामपर जरा भी न पछताता। मेरे भाग्यमें जो लिखा है वह होगा, पर दादाके ऋणसे तो उऋण हो गया; उन्होंने अपनी जिन्दगीमें चारको खिलाकर खाया। क्या मरनेके पीछे उन्हें पिण्डे-पानीको तरसाता।

इस प्रकार तीन मास बीत गये और आसाढ़ आ पहुँचा।

आकाशमें घटायें आयीं, पानी गिरा, किसान हल जुए ठीक करने लगे। बढ़ई हलोंकी मरम्मत करने लगा। गिरधारी पागलकी तरह कभी घरके भीतर जाता, कभी बाहर आता, अपने हलोंको निकाल देखता, इसकी मुठिया, टूट गयी है; इसकी फाल ढीली हो गयी है, जुएमें सैला नहीं है। यह देखते-देखते वह एक क्षण अपनेको भूल गया। दौड़ा हुआ बढ़ईके यहाँ गया और बोला—"रज्जू, मेरे हल भी बिगड़े हुए हैं, चलो बना दो।" रज्जूने उसकी ओर करुणा-भावसे देखा और अपना काम करने लगा। गिरधारी-को होश आ गया, नींदसे चौंक पड़ा, ग्लानिसे उसका सिर झुक गया, आँखें भर आयीं। चुपचाप घर चला आया।

गाँवमें चारों ओर हलचल मची हुई थी। कोई सनके बीज खोजता फिरता था, कोई जमींदारके चौपालसे धानके बीज लिये आता था, कहीं सलाह होती, किस खेतमें क्या बोना चाहिये, कहीं चर्चा होती थी कि पानी बहुत बरस गया, दो-चार दिन ठहरकर बोना चाहिये। गिरधारी ये बातें सुनता और जलहीन मछलीकी तरह तड़पता था।

[५]

एक दिन सन्ध्या समय गिरधारी खड़ा अपने बैलोंको खुजला रहा था कि मंगलसिंह आये और इधर-उधरकी बातें करके बोले—गोईंको बाँधकर कबतक खिलाओगे? निकाल क्यों नहीं देते?

गिरधारीने मलिन भावसे कहा—हाँ कोई गाहक आवे तो निकाल दूँ।

मंगलसिंह – एक गाहक तो हमी हैं, हमींको दे दो।

गिरधारी अभी कुछ उत्तर न देने पाया था कि तुलसी बनिया आया और गरजकर बोला—गिरधर! तुम्हें रुपये देने हैं कि नहीं, वैसा कहो। तीन महीने हीला-हवाला करते चले आते हो। अब कौन खेती करते हो कि तुम्हारी फसलको अगोरे बैठे रहें।

गिरधारीने दीनतासे कहा—साह, जैसे इतने दिनों माने हो आज और मान जाओ। कल तुम्हारी एक-एक कौड़ी चुका दूँगा।

मङ्गल और तुलसीने इशारोंसे बातें कीं और तुलसी मुनमुनाता हुआ चला गया। तब गिरधारी मंगलसिंहसे बोला—तुम इन्हें ले लो तो घरके घरहीमें रह जायं। कभी-कभी आँखसे देख तो लिया करूँगा।

मङ्गलसिंह—मुझे अभी तो ऐसा कोई काम नहीं लेकिन घर पर सलाह करूँगा।

गिरधारी— मुझे तुलसीके रुपये देने हैं, नहीं तो खिलानेको तो भूसा है।

मङ्गल सिंह—यह बड़ा बदमाश है, कहीं नालिश न कर दे।

सरल हृदय गिरधारी धमकीमें आ गया। कार्य्य-कुशल मंगलसिंहको सस्ता सौदा करनेका अच्छा सुअवसर मिला। ८०) की जोड़ी ६०) में ठीक कर ली।

गिरधारीने अबतक बैलोंको न जाने किस आशासे बाँधकर खिलाया था। आज आशाका वह कल्पित सूत्र भी टूट गया। मंगलसिंह गिरधारीकी खाटपर बैठे रुपये गिन रहे थे और

गिरधारी बैलोंके पास विषादमय नेत्रोंसे उनके मुँहकी ओर ताक रहा था। आह! यह मेरे खेतोंके कमानेवाले, मेरे जीवनके आधार, मेरे अन्नदाता, मेरी मान मर्य्यादाकी रक्षा करनेवाले, जिनके लिये पहर रातसे उठकर छांटी काटता था; जिनके खलीदानेकी चिन्ता अपने खानेसे ज्यादा रहती थी, जिनके लिये सारा घर दिनभर हरियाली उखाड़ा करता था। ये मेरी आशाकी दो आँखें, मेरे इरादेके दो तारे, मेरे अच्छे दिनोंके दो चिह्न, मेरे दो हाथ, अब मुझसे बिदा हो रहे हैं।

जब मंगलसिंहने रुपये गिनकर रख दिये और बैलोंको ले चले, तब गिरधारी उनके कन्धोंपर सिर रखकर खूब फूट फूटकर रोया। जैसे कन्या मायकेसे बिदा होते समय माँ-बापके पैरोंको नहीं छोड़ती, उसी तरह गिरधारी इन बैलोंको न छोड़ता था। सुभागी भी दालानमें खड़ी रो रही थी और छोटा लड़का मंगल सिंहको एक बाँसकी छड़ीसे मार रहा था।

रातको गिरधारीने कुछ नहीं खाया। चारपाईपर पड़ रहा। प्रातःकाल सुभागी चिलम भरकर ले गयी तो वह चारपाईपर न था। उसने समझा कहीं गये होंगे। लेकिन जब दो-तीन घड़ी दिन चढ़ आया और वह न लौटा तो उसने रोना-धोना शुरू किया। गाँवके लोग जमा हो गये, चारों ओर खोज होने लगी, पर गिरधारीका पता न चला।

[६]

सन्ध्या हो गयी थी। अन्धेरा छा रहा था। सुभागीने दिया जलाकर गिरधारीके सिरहाने रख दिया था और बैठी द्वारकी

ओर ताक रही थी कि सहसा उसे पैरोंकी आहट मालूम हुई। सुभागीका हृदय धड़क उठा। वह दौड़कर बाहर आयी और इधर-उधर ताकने लगी। उसने देखा कि गिरधारी बैलोंकी नादके पास सिर झुकाये खड़ा है।

सुभागी बोल उठी—घर आओ वहाँ खड़े क्या कर रहे हो, आज सारे दिन कहाँ रहे ?

यह कहते हुए वह गिरधारीकी ओर चली। गिरधारीने कुछ उत्तर न दिया। वह पीछे हटने लगा और थोड़ी दूर जाकर गायब हो गया। सुभागी चिल्लाई और मूर्च्छित होकर गिर पड़ी।

दूसरे दिन कालिकादीन हल लेकर अपने नये खेतपर पहुँचे, अभी कुछ अन्धेरा था। वह बैलोंको हलमें लगा रहे थे कि यकायक उन्होंने देखा कि गिरधारी खेतकी मेड़पर खड़ा है। वही मिर्जई, वही पगड़ी, वही सोंटा।

कालिकादीनने कहा—अरे गिरधारी! मरदे आदमी, तुम यहाँ खड़े हो, और बेचारी सुभागी हैरान हो रही है। कहांसे आ रहे हो ?

यह कहते हुए बैलोंको छोड़कर गिरधारीकी ओर चले। गिरधारी पीछे हटने लगा और पीछेवाले कुएँमें कूद पड़ा। कालिकादीनने चीख मारी और हल-बैल वहीं छोड़कर भागा। सारे गाँवमें शोर मच गया, लोग नाना प्रकारकी कल्पनाएँ करने लगे। कालिकादीनको गिरधारीवाले खेतोंमें जानेकी हिम्मत न पड़ी।

गिरधारीको गायब हुए ६ महीने बीत चुके हैं। उसका बड़ा

लड़का अब एक ईंटके भट्ठेपर काम करता है और २०) महीना घर आता है। अब वह कमीज और अङ्गरेजी जूता पहनता है। घरमें दोनों जून तरकारी पकती है और जौके बदले गेहूँ खाया जाता है, लेकिन गाँवमें उसका कुछ भी आदर नहीं। वह अब मजूरा है। सुभागी अब पराये गाँवमें आये हुए कुत्तेकी भांति दबकती फिरती है। वह अब पंचायतमें नहीं बैठती। वह अब मजूरकी माँ है। कालिकादीनने गिरधारीके खेतोंसे इस्तीफा दे दिया है। क्योंकि गिरधारी अभीतक अपने खेतोंके चारों तरफ मँडराया करता है। अन्धेरा होते ही वह मेड़पर आकर बैठ जाता है और कभी-कभी रातको उधरसे उसके रोनेकी आवाज सुनाई देती है। वह किसीसे बोलता नहीं, किसीको छेड़ता नहीं। उसे केवल अपने खेतोंको देखकर सन्तोष होता है। दीया जलने के बाद उधरका रास्ता बन्द हो जाता है।

लाला ओंकारनाथ बहुत चाहते हैं कि ये खेत उठ जायँ, लेकिन गाँवके लोग उन खेतोंका नाम लेते डरते हैं।

बोध—

[१]

पण्डित चन्द्रधरने एक अपर प्राइमरी मुदरिसी तो कर ली थी, किन्तु सदा पछताया करते थे कि कहांसे इस जंजालमें आ

फँसे। यदि किसी अन्य विभागमें नौकर होते तो अबतक हाथमें चार पैसे होते, आराममे जीवन व्यतीत होता। यहाँ तो महीने भर प्रतीक्षा करनेके पीछे कहीं पन्द्रह रुपये देखनेको मिलते हैं। वह भी इधर आये, उधर गायब। न खानेका सुख, न पहननेका आराम। हमसे तो मजूर ही भले।

पण्डितजीके पड़ोसमें दो महाशय और रहते थे। एक ठाकुर अतिबलसिंह, वह थानेमें हेड कान्सटेबल थे। दूसरे, मुंशी बैजनाथ, वह तहसीलमें सियाहेनवीस थे। इन दोनों आदमियोंका वेतन पण्डितजीसे कुछ अधिक न था, तब भी उनकी चैनसे गुजरती थी। सन्ध्याको वह कचहरीसे आते, बच्चोंको पैसे और मिठाइयाँ देते। दोनों आदमियोंके पास टहलुवे थे। घरमें कुरसियाँ, मेजें, फर्श आदि सामग्रियाँ मौजूद थीं। ठाकुर साहब शामको आराम कुरसीपर लेट जाते और खुशबूदार खमीरा पीते। मुंशीजीको शराब कबाबका व्यसन था। अपने सुसज्जित कमरेमें बैठे हुए बोतल-की-बोतल साफ कर देते। जब कुछ नशा होता तो हारमोनियम बजाते. सारे मुहल्लेमें उनका रोबदाब था। उन दोनों महाशयोंको आते देखकर बनिये उठकर सलाम करते। उनके लिये बाजारमें अलग-भाव था। चार पैसे सेरकी चीज टके सेरमें लाते। लकड़ी ईंधन मुफ्तमें मिलता। पण्डितजी उनके इस ठाट-बाटको देखकर कुढ़ते और अपने भाग्यको कोसते। वह लोग इतना भी न जानते थे कि पृथ्वी सूर्यका चक्कर लगाती है अथवा सूर्य्य पृथ्वीका। साधारण पहाड़ोंका भी ज्ञान न था, तिसपर भी ईश्वरने उन्हें इतनी प्रभुता दे रखी थी। यह लोग पण्डितजीपर बड़ी कृपा

रखते थे। कभी सेर आध सेर दूध भेज देते और कभी थोड़ी-सी तरकारियाँ। किन्तु इसके बदलेमें पण्डितजीको ठाकुर साहबके दो और मुंशीजीके तीन लड़कोंकी निगरानी करनी पड़ती। ठाकुर साहब कहते—"पण्डितजी? यह लड़के हर घड़ी खेला करते हैं, जरा इनकी खबर लेते रहिये।" मुंशीजी कहते—"यह लड़के अवारा हुए जाते हैं। जरा इनका ख्याल रखिये।" यह बातें बड़ी अनुग्रहपूर्ण रीतिसे कही जाती थीं मानों पण्डितजी उनके गुलाम हैं। पण्डितजीको यह व्यवहार असह्य था, किन्तु इन लोगोंको नाराज करनेका साहस न कर सकते थे, उनकी बदौलत कभी-कभी दूध दहीके दर्शन हो जाते, कभी अचार चटनी चख लेते। केवल इतना ही नहीं, बाजारसे चीजें भी सस्ती लाते। इसलिये बेचारे इस अनीतिको विषकी घूँटके समान पीते। इस दुरवस्थासे निकलनेके लिए उन्होंने बड़े-बड़े यत्न किये थे। प्रार्थनापत्र लिखे, अफसरोंकी खुशामदें की, पर आशा न पूरी हुई। अन्तमें हारकर बैठ रहे। हाँ, इतना था कि अपने काममें त्रुटि न होने देते। ठीक समयपर जाते, देर करके आते, मन लगाकर पढ़ाते, इससे उनके अफसर लोग खुश थे। सालमें कुछ इनाम दे देते और वेतन वृद्धिका जब कभी अवसर आता, उनका विशेष ध्यान रखते। परन्तु इस विभागकी वेतनवृद्धि ऊसरकी खेती है। बड़े भाग्यसे हाथ लगती है। बस्तीके लोग उनसे सन्तुष्ट थे, लड़कोंकी संख्या बढ़ गयी थी, और पाठशालाके लड़के तो उनपर जान देते थे। कोई उनके घर आकर पानी भर देता, कोई उनकी बकरीके लिये पत्तियाँ तोड़ लाता। पण्डितजी इसीको बहुत समझते थे।

[२]

एक बार सावनके महीनेमें मुंशी बैजनाथ और ठाकुर अतिबलसिंहने श्रीअयोध्याजीकी यात्राकी सलाह की। दूरकी यात्रा थी। हफ्तों पहलेसे तैयारियाँ होने लगीं। बरसातके दिन, सपरिवार जानेमें अड़चन थी। किन्तु स्त्रियाँ किसी भांति न मानती थीं। अन्तमें विवश होकर दोनों महाशयोंने एक-एक सप्ताहकी छुट्टी ली और अयोध्याजी चले। पण्डितजीको भी साथ चलनेके लिये बाध्य किया। मेले-ठेलेमें एक फालतू आदमीसे बड़े काम निकलते हैं। पण्डितजी असमंजसमें पड़े, परन्तु जब उन लोगोंने उनका व्यय देना स्वीकार किया तो इन्कार न कर सके और अयोध्याजीकी यात्राका ऐसा सुअवसर पाकर न रुक सके।

बिल्हौरसे एक बजे रातको गाड़ी छूटती थी। यह लोग खा पीकर स्टेशनपर आ बैठे। जिस समय गाड़ी आयी, चारों ओर भगदड़ सी पड़ गयी। हजारों यात्री जा रहे थे। उस उतावलीमें मुन्शीजी पहले निकल गये। पण्डितजी और ठाकुर साहब साथ थे। एक कमरेमें बैठे। इस आफतमें कौन किसका रास्ता देखता है।

गाड़ियोंमें जगहकी बड़ी कमी थी, परन्तु जिस कमरेमें ठाकुर साहब थे, उसमें केवल चार मनुष्य थे। वह सब लेटे हुए थे। ठाकुर साहब चाहते थे कि वह उठ जायं तो जगह निकल आवे। उन्होंने एक मनुष्यसे डांटकर कहा—उठ बैठो जी, देखते नहीं हम लोग खड़े हैं।

मुसाफिर लेटे-लेटे बोला—क्यों उठ बैठें जी? कुछ तुम्हारे बैठनेका ठेका लिया है?

ठाकुर—क्या हमने किराया नहीं दिया है ?

मुसाफिर–जिसे किराया दिया हो, उससे जाकर जगह माँगो।

ठाकुर—जरा होशकी बातें करो। इस डब्बेमें दस यात्रियोंके बैठनेकी आज्ञा है।

मुसाफिर—यह थाना नहीं है, जरा जबान सँभालकर बातें कीजिये।

ठाकुर—तुम कौन हो जी ?

मुसाफिर—हम वही हैं जिसपर आपने खुफिया-फरोशीका अपराध लगाया था और जिसके द्वारसे आप नक्द २५) लेकर टले थे।

ठाकुर—अहा ! अब पहचाना। परन्तु मैंने तो तुम्हारे साथ रियायत की थी। चालान कर देता तो तुम सजा पा जाते।

मुसाफिर—और मैंने भी तो तुम्हारे साथ रियायत की कि गाड़ीमें खड़ा रहने दिया। ढकेल देता तो तुम नीचे चले जाते और तुम्हारी हड्डी-पसलीका पता न लगता।

इतनेमें दूसरा लेटा हुआ यात्री [illegible] मारकर हँसा और बोला—क्यों दारोगा साहब, मुझे क्यों नहीं उठाते ?

ठाकुर साहब क्रोधसे लाल हो रहे थे। सोचते थे अगर थानेमें होता तो इनकी जबान खींच लेता, पर इस समय बुरे फँसे थे। वह बलवान मनुष्य थे, पर यह दोनों मनुष्य भी हट्टे कट्टे देख पड़ते थे।

ठाकुर—सन्दूक नीचे रख दो, बस जगह हो जाय।

दूसरा मुसाफिर बोला—और आप ही क्यों न नीचे बैठ

जायँ। इसमें कौनसी हेठी हुई जाती है। यह थाना थोड़े ही है कि आपके रोबमें फर्क पड़ जायगा।

ठाकुर साहबने उसकी ओर भी ध्यानसे देखकर पूछा—क्या तुम्हें भी मुझसे कोई बैर है ?

"जी हाँ, मै तो आपके खूनका प्यासा हूँ।"

"मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, तुम्हारी तो सूरत भी नहीं देखी।

दूसरा मुसाफिर—आपने मेरी सूरत न देखी होगी, पर आपकी मैंने देखी है। इसी कलके मेलेमें आपने मुझे कई डंडे लगाये, मैं चुपचाप तमाशा देखता था, पर आपने आकर मेरा कचूमर निकाल लिया। मैं चुपचाप रह गया, पर घाव दिलपर लगा हुआ है। आज उसकी दवा मिलेगी।

यह कहकर उसने और भी पाँव फैला दिये और क्रोधपूर्ण नेत्रोंसे देखने लगा। पण्डितजी अबतक चुपचाप खड़े थे। डरते थे कि कहीं मारपीट न हो जाय। अवसर पाकर ठाकुर साहबको समझाया। ज्योंही तीसरा स्टेशन आया, ठाकुर साहबने बालबच्चों-को वहांसे निकालकर दूसरे कमरेमें बैठाया। इन दोनों दुष्टोंने उनका असबाब उठा-उठाकर जमींनपर फेंक दिया। जब ठाकुर साहब गाड़ीसे उतरने लगे तो उन्होंने उनको ऐसा धक्का दिया कि बेचारे प्लेटफार्मपर गिर पड़े। गार्डसे कहने दौड़े थे कि इञ्जिनने सीटी दी। जाकर गाड़ीमें बैठ गये।

[३]

उधर मुन्शी बैजनाथकी और भी बुरी दशा थी। सारी रात

जागते गुजरी। जरा पैर फैलानेकी जगह न थी। आज उन्होंने जेबमें बोतल भरकर रख ली थी! प्रत्येक स्टेशनपर कोयला पानी ले लेते थे। फल यह हुआ कि पाचन-क्रियामें विघ्न पड़ गया। एक बार उल्टी हुई और पेटमें मरोड़ होने लगी। बेचारे बड़ी मुश्किलमें पड़े। चाहते थे कि किसी भाँति लेट जायँ, पर वहाँ पैर हिलानेको भी जगह न थी। लखनऊतक तो उन्होंने किसी तरह जब्त किया। आगे चलकर विवश हो गये। एक स्टेशनपर उतर पड़े। खड़े न हो सकते थे। प्लेटफार्मपर लेट गये। पत्नी भी घबराई। बच्चोंको लेकर उतर पड़ी। असबाब उतारा, परन्तु जल्दीमें ट्रंक उतारना भूल गई। गाड़ी चल दी। दारोगाजीने अपने मित्रको इस दशामें देखा तो वह भी उतर पड़े। समझ गये कि हजरत आज ज्यादा चढ़ा गये। देखा तो मुंशीजीकी दशा बिगड़ गयी थी। ज्वर, पेटमें दर्द, नसोंमें तनाव, कै और दस्त। बड़ा खटका हुआ। स्टेशन मास्टरने यह दशा देखी तो समझा हैजा हो गया है। हुक्म दिया कि रोगीको अभी बाहर ले जाओ। विवश होकर लोग मुंशीजीको एक पेड़के नीचे उठा लाये। उनकी पत्नी रोने लगीं। हकीम डाक्टरकी तलाश हुई। पता लगा कि डिस्ट्रिक्टबोर्डकी तरफसे वहाँ एक छोटा सा अस्पताल है। लोगोंकी जानमें जान आयी। किसीसे यह भी मालूम हुआ कि डाक्टर साहब बिल्हौरके रहनेवाले हैं। ढाढ़स बँधा। दारोगाजी अस्पताल दौड़े। डाक्टर साहबसे सारा समाचार कह सुनाया और कहा—आप चलकर जरा उन्हें देख तो लीजिये।

डाक्टरका नाम था चोखेलाल। कम्पौंडर थे, लोग आदरसे

डाक्टर कहा करते थे। सब वृत्तान्त सुनकर रुखाईसे बोले—सवेरेके समय मुझे बाहर जानेकी आज्ञा नहीं है।

दारोगा—तो क्या मुन्शीजीको यहीं लायें।

चोखेलाल—हां आपका जी चाहे लाइये।

दारोगाजीने दौड़-धूपकर एक डोलीका प्रबन्ध किया। मुशीजीको लादकर अस्पताल लाये। ज्यों ही बरामदेमें पैर रखा, चोखेलालने डांटकर कहा—हैजे (वेसूचिका) के रोगीको ऊपर लानेकी आज्ञा नहीं है।

बैजनाथ अचेत तो थे नहीं, आवाज सुनी, पहचाना। धीरेसे बोले—अरे यह तो बिल्हौर हीके हैं; भला सा नाम है। तहसील में आया जाया करते हैं। क्यों महाशय! मुझे पहचानते हैं ?

चोखेलाल—जी हाँ, खूब पहचानता हूँ।

बैजनाथ—पहचानकर भी इतनी निठुरता। मेरी जान निकल रही है। जरा देखिये मुझे क्या हो गया ?

चोखेलाल—हाँ, यह सब कर दूंगा और मेरा काम ही क्या है ? फीस ?

दारोगाजी—अस्पतालमें कैसी फीस जनाब मन ?

चोखेलाल—वैसी ही जैसी इन मुन्शीजीने मुझसे वसूल की थी जनाब मन।

दारोगाजी—आप क्या कहते हैं, मेरी समझमें नहीं आता।

चोखेलाल—मेरा घर बिल्हौरमें है। वहां मेरी थोड़ीसी जमीन है। सालमें दो बार उसकी देख-भालके लिये जाना पड़ता है। जब तहसीलमें लगान दाखिल करने जाता हूँ तो मुन्शीजी डांटकर अपना हक वसूल कर लेते हैं। न दूं तो शामतक खड़ा

रहना पड़े। स्याहा न हो। फिर जनाब कभी गाड़ी नावपर, कभी नाव गाड़ीपर। मेरी फीसके दस रुपये निकालिये। देखूँ, दवा दूँ, नहीं तो अपनी राह लीजिये।

दारोगा——दस रुपये!!

चोखेलाल——जी हाँ, और यहाँ ठहरना चाहें तो दस रुपये रोज।

दारोगाजी विवश हो गये। बैजनाथकी स्त्रीसे रुपये मांगे। तब उसे अपने बक्सकी याद आयी। छाती पीट ली। दारोगाजी के पास भी अधिक रुपये नहीं थे, किसी तरह दस रुपये निकाल कर चोखेलालको दिये। उन्होंने दवा दी। दिनभर कुछ फायदा न हुआ। रातको दशा संभली। दूसरे दिन फिर दवाकी आवश्यकता हुई। मुन्शियाइनका एक गहना जो २०) से कमका न था बाजारमें बेचा गया। तब काम चला। शामतक मुंशीजी चंगे हुए। रातको गाड़ीपर बैठकर अयोध्या चले। चोखेलालको दिलमें खूब गालियाँ दीं।

[४]

श्री अयोध्याजीमें पहुँचकर स्थानकी खोज हुई। पण्डोंके घर जगह न थी। घर-घरमें आदमी भरे हुए थे। सारी बस्ती छान मारी, पर कहीं ठिकाना न मिला। अन्तमें यह निश्चय हुआ कि किसी पेड़के नीचे डेरा जमाना चाहिये। किन्तु जिस पेड़के नीचे जाते थे, वहां यात्री पड़े मिलते। सिवाय खुले मैदानमें रेतपर पड़ रहनेके और कोई उपाय न था। एक स्वच्छ स्थान देखकर बिस्तरे बिछाये और लेटे। इतनेमें बादल घिर आये। बूँदे गिरने लगीं। बिजली चमकने लगी। गरजसे कानके परदे

फटे जाते थे। लड़के रोते थे, स्त्रियोंके कलेजे कांप रहे थे। अब यहाँ ठहरना दुस्सह था, पर जायँ कहाँ।

अकस्मात् एक मनुष्य नदीकी तरफसे लालटेन लिये आता हुआ दिखाई दिया, वह निकट पहुँचा तो पण्डितजीने उसे देखा। आकृति कुछ पहचानी हुई मालूम हुई, किन्तु यह विचार न आया कि कहाँ देखा है। पास जाकर बोले—"क्यों भाई साहब! यहाँ यात्रियोंके ठहरनेके लिये जगह न मिलेगी?" वह मनुष्य रुक गया। पण्डितजीकी ओर ध्यानसे देखकर बोला—आप पण्डित चन्द्रधर तो नहीं हैं?

पण्डितजी प्रसन्न होकर बोले—जी हाँ। आप मुझे कैसे जानते हैं?

उस मनुष्यने सादर पण्डितजीके चरण छुए और बोला—मैं आपका पुराना शिष्य हूँ। मेरा नाम कृपाशङ्कर है। मेरे पिता कुछ दिनों बिल्हौरमें डाक मुन्शी रहे थे। उन्हीं दिनों मैं आपकी सेवामें पढ़ता था।

पंडितजीकी स्मृति जागी। बोले—ओहो तुम्हीं हो कृपाशंकर। तब तो तुम दुबले-पतले लड़के थे, कोई आठ नौ साल हुए होंगे।

कृपाशंकर—जी हाँ, नवाँ साल है। मैंने वहाँसे आकर इन्ट्रेंस पास किया, अब यहाँ म्युनिसिपलिटीमें नौकर हूँ। कहिये आप तो अच्छी तरह रहे। सौभाग्य था कि आपके दर्शन हो गये।

पण्डितजी—मुझे भी तुमसे मिलकर बड़ा आनन्द हुआ। तुम्हारे पिता अब कहाँ हैं।

कृपाशङ्कर—उनका तो देहान्त हो गया। माता साथ हैं। आप यहाँ कब आये?

पण्डितजी—आज ही आया हूँ। पण्डोंके घर जगह न मिली। विवश हो यहीं रात काटनेकी ठहरी।

कृपाशङ्कर—बाल बच्चे भी साथ हैं?

पण्डितजी—नहीं, मैं तो अकेले ही आया हूँ, पर मेरे साथ दारोगाजी और सियाहेनवीस साहब हैं—उनके बाल-बच्चे भी साथ हैं।

कृपाशङ्कर—कुल कितने मनुष्य होंगे?

पण्डितजी—हैं तो दस, किन्तु थोड़ी सी जगहमें निर्वाह कर लेंगे।

कृपाशंकर—नहीं साहब बहुतसी जगह लीजिये। मेरा बड़ा मकान खाली पड़ा है। चलिये आरामसे एक, दो, तीन दिन रहिये। मेरा परम सौभाग्य है कि आपकी कुछ सेवा करनेका अवसर मिला।

कृपाशंकरने कई कुली बुलाये। असबाब उठवाया और सबको अपने मकानपर ले गया। साफ-सुथरा घर था। नौकरने चटपट चारपाइयाँ बिछा दीं। घरमें पूरियाँ पकने लगीं। कृपा-शंकर हाथ बाँधे सेवककी भाँति दौड़ता था। हृदयोल्लाससे उसका मुखकमल चमक रहा था। उसकी विनय और नम्रताने सबको मुग्ध कर लिया।

और सब लोग तो खा-पीकर सोये, किन्तु पण्डित चन्द्रधर-को नींद नहीं आयी। उनकी विचार-शक्ति इस यात्राकी घट-नाओंका उल्लेख कर रही थीं। रेलगाड़ीकी रगड़ झगड़ और चिकित्सालयकी नोच-खसोटके सम्मुख कृपाशंकरकी सहृदयता और शालीनता प्रकाशमय दिखाई देती थी। पण्डितजीने आज

शिक्षकका गौरव समझा। उन्हें आज इस पदकी महानता ज्ञात हुई।

यह लोग तीन दिन अयोध्या रहे। किसी बातका कष्ट न हुआ। कृपाशंकरने उनके साथ जाकर प्रत्येक धामका दर्शन कराया।

तीसरे दिन जब लोग चलने लगे तो वह स्टेशनतक पहुँचाने आया। जब गाड़ीने सीटी दी तो उसने सजलनेत्रोंमे पण्डितजीके चरण छुये और बोला—कभी कभी इस सेवकको याद करते रहियेगा।

पण्डितजी घर पहुँचे तो उनके स्वभावमें बड़ा परिवर्तन हो गया था। उन्होंने फिर किसी दूसरे विभागमें जानेकी चेष्टा नहीं की।

सचाईका उपहार—

[१]

तहसीली मदरसा बराँवके प्रथमाध्यापक मुन्शी भवानी-सहायको बागवानीका कुछ व्यसन था। क्यारियोंमें भांति भांतिके फूल और पत्तियाँ लगा रखी थीं। दरवाजोंपर लतायें चढ़ा दी थीं। इससे मदरसेकी शोभा अधिक हो गई थी। वह मिडिल कक्षाके लड़कोंसे भी अपने बगीचेके सींचने और साफ करनेमें

मदद लिया करते थे। अधिकांश लड़के इस कामको रुचिपूर्वक करते। इसमे उनका मनोरंजन होता था। किन्तु दरजेमें चार-पाँच लड़के जमींदारोंके थे। उनमें ऐसी दुर्जनता थी कि यह मनोरंजक कार्य भी उन्हें बेगार प्रतीत होता। उन्होंने बाल्यकाल-से आलस्यमें जीवन व्यतीत किया था। अमीरीका झूठा अभिमान दिलमें भरा हुआ था। वह हाथसे कोई काम करना निन्दाकी बात समझते थे। उन्हें इस बगीचेमे घृणा थी। जब उनके काम करनेकी बारी आती तो कोई-न-कोई बहाना करके उड़ जाते। इतना ही नहीं, दूसरे लड़कोंको बहकाते और कहते-वाह! पढ़ें फारसी, बचें तेल! यदि खुरपा कुदाल ही करना है तो मदरसेमें किताबोंसे सिर मारनेकी क्या जरूरत? यहाँ पढ़ने आते हैं, कुछ मजूरी करने नहीं आते। मुन्शीजी इस अवज्ञा के लिये उन्हें कभी-कभी दण्ड दे देते थे। इससे उनका द्वेष और भी बढ़ता था। अन्तमें यहाँतक नौबत पहुँची कि एक दिन उन लड़कोंने सलाह करके उस पुष्प-वाटिकाको विध्वंस करनेका निश्चय किया। दस बजे मदरसा लगता था, किन्तु उस दिन वह आठ ही बजे आ गये और बगीचेमें घुसकर उसे उजाड़ने लगे। कहीं पौधे उखाड़ फेंके, कहीं क्यारियोंको रौंद डाला, पानीकी नालियाँ तोड़ डालीं, क्यारियोंकी मेड़ें खोद डालीं। मारे भयके छाती धड़क रही थी कि कहीं कोई देखता न हो। लेकिन एक छोटी सी फुलवारीको उजाड़ते कितनी देर लगती है। दस मिनिट-में हरा-भरा बाग नष्ट हो गया। तब यह लड़के शीघ्रतासे निकले, लेकिन दरवाजे तक आये थे कि उन्हें अपने एक सहपाठीकी सूरत दिखाई दी। यह एक दुबला, पतला, दरिद्र और चतुर

लड़का था। उसका नाम बाजबहादुर था। बड़ा गम्भीर, शान्त लड़का था। ऊधम पार्टीके लड़के उससे जलते थे। उसे देखते ही उनका रक्त सूख गया। विश्वास हो गया कि इसने जरूर देख लिया। यह मुन्शीजीसे कहे बिना न रहेगा। बुरे फँसे, आज कुशल नहीं है। यह राक्षस इस समय यहाँ क्या करने आया था। आपसमें इशारे हुए। यह सलाह हुई कि इसे मिला लेना चाहिये। जगतसिंह उनका मुखिया था। आगे बढ़कर बोला— आज इतने सवेरे कैसे आ गये? हमने तो आज तुम लोगोंके गलेकी फाँसी छुड़ा दी। लाला बहुत दिक किया करते थे, यह करो, वह करो। मगर यार देखो, कहीं मुन्शीजीसे जड़ मत देना, नहीं तो लेनेके देने पड़ जायँगे।

जयरामने कहा—कह क्या देंगे अपने ही तो हैं, हमने जो कुछ किया है वह सबके लिये किया है, केवल अपनी ही भलाईके लिये नहीं। चलो यार, तुम्हें बाजारकी सैर करा दें, मुँह मीठा करा दें।

बाजबहादुरने कहा—नहीं, मुझे आज घरपर पाठ याद करने का अवकाश नहीं मिला। यहीं बैठकर पढ़ूँगा।

जगतसिंह—अच्छा, मुन्शीजीसे कहोगे तो न?

बाजबहादुर—मैं स्वयम् कुछ न कहूँगा, लेकिन उन्होंने मुझसे पूछा तो?

जगतसिंह—कह देना मुझे नहीं मालूम।

बाजबहादुर—यह झूठ मुझसे न बोला जायगा।

जयराम—अगर तुमने चुगली खाई और हमारे ऊपर मार पड़ी तो हम तुम्हें पीटे बिना न छोड़ेंगे।

बाजबहादुर—हमने कह दिया कि चुगली न खायँगे लेकिन मुन्शीजीने पूछा तो झूठ भी न बोलेंगे।

जयराम—तो हम तुम्हारी हड्डियाँ भी तोड़ देंगे।

बाजबहादुर—इसका तुम्हें अधिकार है।

[२]

दस बजे जब मदरसा लगा और मुन्शी भवानीसहायने बागकी यह दुर्दशा देखी तो क्रोधमें आग हो गये। बागके उजड़नेका इतना खेद न था जितना लड़कोंकी शरारतका। यदि किसी सांड़ने यह दुष्कृत किया होता तो वह केवल हाथ मलकर रह जाते। किन्तु लड़कोंके इस अत्याचारको सहन न कर सके। ज्योंही लड़के दरजेमें बैठ गये, वह तीवर बदले हुए आये और पूछा—यह बाग किसने उजाड़ा है?

कमरेमें सन्नाटा छा गया। अपराधियोंके चेहरोंपर हवाइयाँ उड़ने लगीं। मिडल कक्षाके २५ विद्यार्थियोंमें कोई ऐसा न था जो इस घटनाको न जानता हो, किन्तु किसीमें यह साहस न था कि उठकर साफ साफ कह दे। सब-के सब सिर झुकाये मौन धारण किये बैठे थे।

मुन्शीजीका क्रोध और भी प्रचण्ड हुआ। चिल्लाकर बोले—मुझे विश्वास है कि यह तुम्हीं लोगोंमेंसे किसीकी शरारत है। जिसे मालूम हो स्पष्ट कह दे, नहीं तो मैं एक सिरेसे पीटना शुरू करूँगा, फिर कोई यह न कहे कि हम निरपराध मारे गये।

एक लड़का भी न बोला। वही सन्नाटा!

मुन्शीजी—देवीप्रसाद, तुम जानते हो?

देवी—जी नहीं, मुझे कुछ नहीं मालूम ।

"शिवदास, तुम जानते हो ?"

"जी नहीं, मुझे कुछ नहीं मालूम ।"

"बाजबहादुर तुम कभी झूठ नहीं बोलते, तुम्हें मालूम है ?"

बाजबहादुर खड़ा हो गया, उसके मुख-मण्डलपर वीरत्वका प्रकाश था। नेत्रोंमे साहस झलक रहा था। बोला—जी हाँ!

मुन्शीजीने कहा—शाबाश !

अपराधियोंने बाजबहादुरकी ओर रक्तवर्ण आँखोंसे देखा और मनमें कहा—अच्छा !

[३]

भवानीसहाय बड़े धैर्यवान मनुष्य थे। यथाशक्ति लड़कोंको यातना नहीं देते थे। किन्तु ऐसी दुष्टताका दण्ड देनेमें वह लेश-मात्र भी दया न दिखाते थे। छड़ी मँगाकर पाँचों अपराधियोंको दस-दस छड़ियाँ लगाईं, सारे दिन बेंचपर खड़ा रखा और चालचलनके रजिस्टरमें उनके नामके सामने काले चिह्न बना दिये।

बाजबहादुरसे शरारत पार्टीवाले लड़के योंही जला करते थे, आज उसकी सचाईके कारण उसके खूनके प्यासे हो गये। यंत्रणामें सहानुभूति पैदा करनेकी शक्ति होती है। इस समय दरजेके अधिकांश लड़के अपराधियोंके मित्र हो रहे थे। उनमें षड्यंत्र रचा जाने लगा कि आज बाजबहादुरकी खबर ली जाय। ऐसा मारो कि फिर मदरसेमें मुँह न दिखावे। यह हमारे घरका भेदी है। दगाबाज ! बड़ा सच्चेकी दुम बना है ! आज इस सचाई का हाल मालूम हो जायगा। बेचारे बाजबहादुरको इस गुप्त-

लीलाकी जरा भी खबर न थी। विद्रोहियोंने उसे अन्धकारमें रखनेका पूरा यत्न किया था।

छुट्टी होनेके बाद बाजबहादुर घरकी तरफ चला। रास्तेमें एक अमरूदका बाग था। वहाँ जगतसिंह और जयराम कई लड़कोंके साथ खड़े थे। बाजबहादुर चौंका, समझ गया कि यह लोग मुझे छेड़नेपर उतारू हैं। किन्तु बचनेका कोई उपाय न था। कुछ हिचकता हुआ आगे बढ़ा। जगतसिंह बोला—आओ लाल! बहुत राह दिखाई। आओ सचाईका इनाम लेते जाओ।

बाजबहादुर—रास्तेसे हट जाओ, मुझे जाने दो।

जयराम—जरा सचाईका मजा तो चखते जाइए।

बाजबहादुर—मैंने तुमसे कह दिया था कि जब मेरा नाम लेकर पूछेंगे तो मैं बता दूँगा।

जयराम—हमने भी तो कह दिया था कि तुम्हें इस कामका इनाम दिये बिना न छोड़ेंगे।

यह कहते ही वह बाजबहादुरकी तरफ घूँसा तानकर बढ़ा। जगतसिंहने उसके दोनों हाथ पकड़ने चाहे। जयरामका छोटा भाई शिवराम अमरूदकी एक टहनी लेकर झपटा। शेष लड़के चारों तरफ खड़े होकर तमाशा देखने लगे। यह 'रिजर्व' सेना थी जो आवश्यकता पड़नेपर मित्रदलकी सहायताके लिये तैयार थी। बाजबहादुर दुर्बल लड़का था। उसकी मरम्मत करनेको वह तीन मजबूत लड़के काफी थे। सब लोग यही समझ रहे थे कि क्षण-भरमें यह तीनों उसे गिरा लेंगे। बाज बहादुरने जब देखा कि शत्रुओंने शस्त्रप्रहार करना शुरू कर दिया तो उसने कनखियोंसे इधर-उधर देखा। तब तेजीसे झपटकर शिवरामके हाथसे अमरूद-

की टहनी छीन ली और दो कदम पीछे हटकर टहनी ताने हुए बोला—तुम मुझे सचाईका इनाम या सजा देनेवाले कौन होते हो ?

दोनो ओरसे दांव-पेंच होने लगे। बाजबहादुर था तो कमजोर, पर अत्यन्त चपल और सतर्क था, उसपर सत्यका विश्वास हृदयको और भी बलवान बनाए हुए था। सत्य चाहे सिर कटा दे, लेकिन कदम पीछे नहीं हटाता। कई मिनटतक बाजबहादुर उछल-उछलकर वार करता और हटाता रहा। लेकिन अमरूदकी टहनी कहांतक थाम सकती। जरा देरमें उसकी धज्जियाँ उड़ गयीं। जबतक उसके हाथमें वह हरी तलवार रही, कोई उसके निकट आनेकी हिम्मत न करता था। निहत्था होनेपर भी वह ठोकरों और घूंसोंसे जवाब देता रहा। मगर अन्तमें अधिक संख्याने विजय पायी। बाजबहादुरकी पसलीमें जयरामका एक घूंसा ऐसा पड़ा कि वह बेदम होकर गिर पड़ा। आंखें पथरा गयीं और मूर्च्छा-सी आ गयी। शत्रुओंने यह दशा देखी तो उनके हाथोंके तोते उड़ गए। समझे इसकी जान निकल गयी। बेतहाशा भागे।

[४]

कोई दस मिनटके पीछे बाजबहादुर सचेत हुआ। कलेजे पर चोट लग गयी थी। घाव ओछा पड़ा था, तिसपर भी खड़े होनेकी शक्ति न थी। साहस करके उठा और लंगड़ाता हुआ घरकी ओर चला।

उधर यह विजयी दल भागते-भागते जयरामके मकानपर

पहुंचा। रास्ते हीमें सारा दल तितर-वितर हो गया। कोई इधरसे निकल भागा कोई उधरसे, कठिन समस्या आ पड़ी थी। जयरामके घरतक केवल तीन सुदृढ़ लड़के पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उनकी जान-में-जान आयी।

जयराम—कहीं मर न गया हो, मेरा घूँसा खूब बैठ गया था।

जगतसिंह—तुम्हें पसलीमें नहीं मारना चाहिये था। अगर तिल्ली फट गयी होगी तो न बचेगा!

जयराम—यार मैंने जानके थोड़े ही मारा था। संयोग ही था। अब बताओ क्या किया जाय?

जगतसिंह—करना क्या है चुपचाप बैठे रहो।

जयराम—कहीं मै अकेला तो न फँसूँगा?

जगतसिंह—अकेले कौन फँसेगा, सब-के-सब साथ चलेंगे।

जयराम—अगर बाजबहादुर मरा नहीं है तो उठकर सीधे मुंशीजीके पास जायगा।

जगतसिंह—और मुंशीजी कल हम लोगोंकी खाल अवश्य उधेड़ेंगे।

जयराम—इसलिये मेरी सलाह है कि कलसे मदरसे जाओ ही नहीं। नाम कटाके दूसरी जगह चले चलें। नहीं तो बीमारीका बहाना करके बैठ रहें। महीने दो महीनेके बाद जब मामला ठंढा पड़ जायगा तो देखा जायगा।

शिवराम—और जो परीक्षा होनेवाली है?

जयराम—ओ हो! इसका तो खयाल ही न था। एक ही महीना तो और रह गया है।

जगतसिंह—तुम्हें अबकी जरूर वजीफा मिलता ।

जयराम—हाँ मैंने बहुत परिश्रम किया था । तो फिर ?

जगतसिंह—कुछ नहीं तरक्की तो हो ही जायगी । वजीफेसे हाथ धोना पड़ेगा ।

जयराम—बाजबहादुरके हाथ लग जायगा ।

जगतसिंह—बहुत अच्छा होगा, बेचारेने मार भी तो खायी है ।

दूसरे दिन मदरसा लगा । जगतसिंह, जयराम और शिवराम तीनों गायब थे । वलीमहम्मद पैरमें पट्टी बांधे आये थे, लेकिन भयके मारे बुरा हाल था, कलके दर्शकगण भी थरथरा रहे थे कि कहीं हमलोग भी गेहूँके साथ घुनकी तरह न पिस जायँ । बाजबहादुर नियमानुसार अपने काममें लगा हुआ था । ऐसा मालूम होता था कि मानों उसे कलकी बातें याद ही नहीं हैं । किसीसे उनकी चर्चा न की । हाँ, आज वह अपने स्वभावके प्रति-कूल कुछ प्रसन्नचित्त देख पड़ता था । विशेषतः कलके योद्धाओंसे वह अधिक हिलामिला हुआ था । वह चाहता था कि यह लोग मेरी ओरसे निःशङ्क हो जायँ । रातभरकी विवेचनाके पश्चात् उसने यही निश्चय किया था और आज जब सन्ध्या समय वह घर चला तो उसे अपनी उदारताका फल मिल चुका था । उसके शत्रु लज्जित थे और उसकी प्रशंसा करते थे ।

मगर यह तीनों अपराधी दूसरे दिन भी न आये, तीसरे दिन भी उनका कहीं पता न था । वह घरसे मदरसेको चलते लेकिन देहातकी तरफ निकल जाते । वहाँ दिन भर किसी वृक्षके नीचे बैठे रहते. अथवा गल्ली डंडे खेलते । शामको घर चले आते ।

उन्होंने यह पता तो लगा लिया था कि इस समरके अन्य सभी योद्धागण मदरसे आते हैं और मुन्शीजी उनसे कुछ नहीं बोलते, किन्तु चित्तसे शङ्का दूर न होती थी। बाजबहादुरने जरूर कहा होगा। हम लोगोंके जानेकी देर है। गये और बेभावकी पड़ी। यही सोचकर मदरसे आनेका साहस न कर सकते थे।

[५]

चौथे दिन प्रातःकाल तीनों अपराधी बैठे सोच रहे थे कि आज किधर चलना चाहिये। इतनेमें बाजबहादुर आता हुआ दिखाई दिया। इन लोगोंको आश्चर्य तो हुआ परन्तु उसे अपने द्वारपर आते देखकर कुछ आशा बँध गयी। यह लोग अभी बोलने भी न पाये थे कि बाजबहादुरने कहा—क्यों मित्रो, तुम लोग मदरसे क्यों नहीं आते? तीन दिनसे गैरहाजिरी हो रही है।

जगतसिंह—मदरसे क्या जायँ, जान भारी पड़ी है? मुन्शीजी एक हड्डी भी तो न छोड़ेंगे।

बाजबहादुर—क्यों, वलीमुहम्मद, दुर्गा, सभी तो जाते हैं। मुन्शीजीने किसीसे भी कुछ कहा?

जयराम—तुमने उन लोगोंको छोड़ दिया होगा, लेकिन हमें भला आप क्यों छोड़ने लगे। तुमने एक-एक की तीन-तीन जड़ी होगी।

बाजबहादुर—आज मदरसे चलकर इसकी परीक्षा ही कर लो।

जगतसिंह—यह झांसे रहने दीजिये। हमें पिटवानेकी चाल है।

बाजबहादुर—तो मैं कहीं भागा तो नहीं जाता? उस दिन

सचाई की सजा दी थी, आज झूठका इनाम दे देना।

जयराम—सच कहते हो तुमने शिकायत नहीं की ?

बाजबहादुर—शिकायतकी कौन बात थी। तुमने मुझे मारा, मैंने तुम्हें मारा। अगर तुम्हारा घूँसा न पड़ता तो मैं तुम लोगोंको रणक्षेत्रसे भगाकर दम लेता। आपसके झगड़ोंकी शिकायत करनेकी मेरी आदत नहीं है।

जगतसिंह—चलूँ तो यार, लेकिन विश्वास नहीं आता, तुम हमें झांसे दे रहे हो, कचूमर निकलवा लोगे।

बाजबहादुर—तुम जानते हो झूठ बोलनेकी मेरी बान नहीं है।

यह शब्द बाजबहादुरने ऐसी विश्वासोत्पादक रीतिसे कहे कि उन लोगोंका भ्रम दूर हो गया। बाजबहादुरके चले जानेके पश्चात् तीनों देर तक उसकी बातोंकी विवेचना करते रहे। अन्तमें यही निश्चय हुआ कि आज चलना चाहिये।

ठीक दस बजे तीनों मित्र मदरसे पहुँच गये, किन्तु चित्तमें आशंकित थे। चेहरेका रङ्ग उड़ा हुआ था।

मुन्शीजी कमरेमें आये। लड़कोंने खड़े होकर उनका स्वागत किया, उन्होंने तीनों मित्रोंकी ओर तीव्र दृष्टिसे देखकर केवल इतना कहा—तुम लोग तीन दिनसे गैरहाजिर हो। देखो दरजेमें जो इम्तहानी सवाल हुए हैं उन्हें नकल कर लो।

फिर पढ़ानेमें मग्न हो गये।

[६]

जब पानी पीनेके लिये लड़कोंको आध घंटेका अवकाश

मिला तो तीनों मित्र और उनके सहयोगी जमा होकर बातें करने लगे।

जयराम—हम तो जानपर खेलकर मदरसे आये थे, मगर बाजबहादुर है बातका धनी।

वलीमुहम्मद—मुझे तो ऐसा मालूम होता है वह आदमी नहीं देवता है। यह आँखों देखी बात न होती तो मुझे कभी इसपर विश्वास न आता।

जगतसिंह—भलमनसी इसीको कहते हैं। हमसे बड़ी भूल हुई कि उसके साथ ऐसा अन्याय किया।

दुर्गा—चलो उससे क्षमा मागें।

जयराम—हाँ, यह तुम्हें खूब सूझी। आज ही।

जब मदरसा बन्द हुआ तो दरजेके सब लड़के मिलकर बाज-बहादुरके पास गये। जगतसिंह उनका नेता बनकर बोला—भाई साहब हम सब-के-सब तुम्हारे अपराधी हैं। तुम्हारे साथ हम लोगोंने जो अत्याचार किया है, उसपर हम हृदयसे लज्जित हैं। हमारा अपराध क्षमा करो। तुम सज्जनताकी मूर्ति हो, हम लोग उजड्ड, गँवार और मूर्ख हैं, हमें अब क्षमा प्रदान करो।

बाजबहादुरकी आँखोंमें आँसू भर आये, बोला—मैं पहले भी तुम लोगोंको अपना भाई समझता था और अब भी वही सम-झता हूँ। भाइयोंके झगड़ेमें क्षमा कैसी।

सब के-सब उससे गले मिले। इसकी चर्चा सारे मदरसेमें

फैल गयी। सारा मदरसा बाजबहादुरकी पूजा करने लगा। वह अपने मदरसेका मुखिया, नेता और शिरमौर बन गया।

पहले उसे सचाईका दण्ड मिला; अबकी

सचाईका उपहार

मिला।

ज्वालामुखी--

[१]

डिग्री लेनेके बाद मैं नित्य लाइब्रेरी जाया करता। पत्रों या किताबोंका अवलोकन करनेके लिये नहीं। किताबोंको तो मैंने छूनेकी कसम खा ली थी। जिस दिन गजटमें अपना नाम देखा, उसी दिन मिल और कैन्टको उठाकर ताकपर रख दिया। मैं केवल अँग्रेजी पत्रोंके 'वान्टेड' कालमोंको देखा करता। जीवन-यात्राकी फिक्र सवार थी। मेरे दादा या परदादाने किसी अँग्रेज-को गदरके दिनोंमें बचाया होता अथवा किसी इलाकेका जमींदार होता तो कहीं "नामिनेशन" के लिये उद्योग करता। पर मेरे पास कोई सिफारिश न थी। शोक! कुत्ते, बिल्लियों और मोटरोंकी माँग सबको थी। पर बी० ए० पासका कोई पुरसाँहाल न था। महीनों इसी तरह दौड़ते गुजर गये, पर अपनी रुचिके अनुसार कोई जगह नजर न आयी। मुझे अक्सर अपने बी० ए० होनेपर क्रोध आता था। ड्राइवर, फायरमैन, मिस्त्री, खानसामा या बावर्ची होता तो मुझे इतने दिनों बेकार न बैठना पड़ता।

एक दिन मैं चारपाईपर लेटा हुआ एक पत्र पढ़ रहा था कि मुझे एक मार्ग अपनी इच्छाके अनुसार दिखाई दी। किसी रईस-को एक प्राइवेट सेक्रेटरीकी जरूरत थी जो विद्वान, रसिक, सहृदय और रूपवान हो। वेतन एक हजार मासिक! मैं उछल पड़ा। कहीं मेरा भाग्य उदय हो जाता और यह पद मुझे मिल जाता तो जिन्दगी चैनसे कट जाती। उसी दिन मैंने अपना विनयपत्र अपने फोटोके साथ रवाना कर दिया, पर अपने आत्मीय गणोंमें किसीसे इसका जिक्र न किया कि कहीं लोग मेरी हँसी न उड़ायें। मेरे लिये ३०) मासिक भी बहुत थे। एक हजार कौन देगा? पर दिलसे यह ख्याल दूर न होता। बैठे-बैठे शेख चिल्लीके मन्सूबे बांधा करता। फिर होशमें आकर अपनेको समझाता कि मुझमें ऐसे ऊंचे पदके लिये कौन सी योग्यता है। मैं अभी कालेजसे निकला हुआ पुस्तकोंका पुतला हूँ। दुनियांसे बेखबर! इस पदके लिये एक-से-एक विद्वान, अनुभवी पुरुष मुंह फैलाये बैठे होंगे। मेरे लिये कोई आशा नहीं। मैं रूपवान सही, सजीला सही मगर ऐसे पदोंके लिये केवल रूपवान होना काफी नहीं होता। विज्ञापनमें इसकी चर्चा करनेसे केवल इतना अभिप्राय होगा कि कुरूप आदमीकी जरूरत नहीं, और उचित भी है। बल्कि बहुत सजीलापन तो ऊँचे पदोंके लिये कुछ शोभा नहीं देता। मध्यम श्रेणीका तोंद, भरा हुआ शरीर, फूले हुए गाल और गौरवयुक्त वाक्य-शैली यह उच्चपद-धारियोंके लक्षण हैं और मुझे इनमेंसे एक भी मयस्सर नहीं। इसी आशा और भयमें एक सप्ताह गुजर गया और अब मैं निराश हो गया। मैं भी कैसा ओछा हूँ कि एक बे-सिर-पैरकी

बातके पीछे ऐसा फूल उठा, इसीको लड़कपन कहते हैं। जहाँ तक मेरा ख्याल है, किसी दिल्लगीबाजने आजकल शिक्षित समाजकी मूर्खताकी परीक्षा करनेके लिये यह स्वांग रचा है! मुझे इतना भी न सूझा। मगर आठवें दिन प्रातःकाल तारके चपरासीने मुझे आवाज दी। मेरे हृदयमें गुदगुदी-सी होने लगी। लपका हुआ आया। तार खोलकर देखा, लिखा था—स्वीकार है शीघ्र आओ ऐशगढ़।

मगर यह सुख सम्वाद पाकर मुझे वह आनन्द न हुआ जिसकी आशा थी। मैं कुछ देरतक खड़ा सोचता रहा, किसी तरह विश्वास न आता था। जरूर किसी दिल्लगीबाजकी शरारत है। मगर कोई मुजायका नहीं, मुझे भी इसका मुहतोड़ जवाब देना चाहिये। तार दे दूँ कि एक महीनेका तनख्वाह भेज दो। आप ही सारी कलई खुल जायगी। मगर फिर विचार किया, कहीं वास्तवमें नसीब जगा हो तो इस उद्दण्डतासे बना-बनाया खेल बिगड़ जायगा। चलो दिल्लगी ही सही। जीवनमें यह घटना भी स्मरणीय रहेगी। इस तिलस्मको खोल ही डालूँ। यह निश्चय करके तार द्वारा अपने आनेकी सूचना दे दी और सीधे रेलवे स्टेशनपर पहुँचा। पूछनेपर मालूम हुआ कि यह स्थान दक्खिनकी ओर है। टाइमटेबुलमें उसका वृत्तान्त विस्तारके साथ लिखा हुआ था। स्थान अति रमणीय है, पर जलवायु स्वास्थ्यकर नहीं। हाँ, हृष्टपुष्ट नवयुवकोंपर उसका असर शीघ्र नहीं होता। दृश्य बहुत मनोरम है पर जहरीले जानवर बहुत मिलते हैं। यथासाध्य अन्धेरी घाटियोंमें न जाना चाहिये। यह वृत्तान्त पढ़कर उत्सुकता और भी बढ़ी। जहरीले

जानवर हैं तो हुआ करें, कहाँ नहीं हैं! मैं अन्धेरी घाटियोंके पास भूलकर भी न जाऊँगा। आकर सफरका सामान ठीक किया और ईश्वरका नाम लेकर नियत समयपर स्टेशनकी तरफ चला, पर अपने आलापी मित्रोंसे इसका कुछ जिक्र न किया, क्योंकि मुझे पूरा विश्वास था कि दो ही चार दिनमें फिर अपना सा मुँह लेकर लौटना पड़ेगा।

[२]

गाड़ीपर बैठा तो शाम हो गयी थी। कुछ देरतक तो सिगार और पत्रोंसे दिल बहलाता रहा। फिर मालूम नहीं कब नींद आ गयी। आँखें खुलीं और खिड़कीसे बाहरकी तरफ झाँका तो उषाकालका मनोहर दृश्य दिखाई दिया। दोनों ओर हरे वृक्षोंसे ढँकी हुई पर्वत श्रेणियाँ, उनपर चरती हुई उजली-उजली गायें और भेड़ें सूर्यकी सुनहरी किरणोंमें रँगी हुई बहुत सुन्दर मालूम होती थीं। जी चाहता था कि कहीं मेरी कुटिया भी इन्हीं सुखद पहाड़ियोंमें होती, जंगलके फल खाता, झरनोंका ताजा पानी पीता और आनन्दके गीत गाता। यकायक दृश्य बदला, कहीं उजले-उजले पक्षी तैरते थे और कहीं छोटी-छोटी डोंगिया निर्बल आत्माओंके सदृश डगमगाती हुई चली जाती थीं। यह दृश्य भी बदला। पहाड़ियोंके दामनमें एक गाँव नजर आया, झाड़ियों और वृक्षोंसे ढका हुआ, मानों शान्ति और सन्तोषने यहाँ अपना निवासस्थान बनाया हो। कहीं बच्चे खेलते थे, कहीं गायके बछड़े किलोलें करते थे। फिर एक घना जंगल मिला। झुण्ड के झुण्ड हिरन दिखाई दिये जो गाड़ीकी हाहाकार

सुनतेही चौकड़ियाँ भरते दूर भाग जाते थे। यह सब दृश्य स्वप्न के चित्रोंके समान आँखोंके सामने आते थे और एक क्षणमें गायब हो जाते थे। उनमें एक अवर्णनीय शान्तिदायिनी शोभा थी जिससे हृदयमें आकांक्षाओंके आवेग उठने लगते थे।

आखिर ऐशगढ़ निकट आया। मैंने बिस्तर संभाला। जरा देरमें सिग्नल दिखाई दिया। मेरी छाती धड़कने लगी। गाड़ी रुकी। मैंने उतरकर इधर-उधर देखा, कुलियोंको पुकारने लगा। कि इतनेमें दो वरदी पहने हुए आदमियोंने आकर मुझे सादर सलाम किया और पूछा—"आप···से आ रहे हैं न, चलिये मोटर तैयार है।" मेरी बाछें खिल गयी। अबतक कभी मोटरपर बैठनेका सौभाग्य न हुआ था। शानके साथ जा बैठा। मनमें बहुत लज्जित था कि ऐसे फटे हाल क्यों आया, अगर जानता कि सचमुच सौभाग्य सूर्य्य चमका है तो टाटबाटसे आता। खैर मोटर चली, दोनों तरफ मौलसरीके सघन वृक्ष थे। सड़कपर लाल बजरी बिछी हुई थी। सड़क हरे-भरे मैदानमें किसी सुरम्य जलधाराके सदृश बल खाती चली गयी थी। दस मिनट भी न गुजरे होंगे कि सामने एक शान्तिमय सागर दिखाई दिया। सागरके उस पार पहाड़ीपर एक विशाल भवन बना हुआ था। भवन अभिमानसे सिर उठाये हुए था, सागर सन्तोषसे नीचे लेटा हुआ, सारा दृश्य काव्य शृङ्गार, और आमोदसे भरा हुआ था।

हम सदर दरवाजेपर पहुँचे, कई आदमियोंने दौड़कर मेरा स्वागत किया। इनमें एक शौकीन मुन्शीजी थे, जो बाल सँवारे आँखोंमें सुर्मा लगाए हुये थे। मेरे लिए जो कमरा सजाया गया

था उसके द्वारपर मुझे पहुँचाकर बोले—सरकारने फरमाया है, इस समय आप आराम करें, सन्ध्या समय मुलाकात कीजियेगा।

मुझे अबतक इसकी कुछ खबर न थी कि यह "सरकार" कौन हैं, न मुझे किसीसे पूछनेका साहस हुआ, क्योंकि अपने स्वामीके नामतकसे अनभिज्ञ होनेका परिचय नहीं देना चाहता था। मगर इसमें कोई सन्देह नहीं कि मेरा स्वामी बड़ा सज्जन मनुष्य था। मुझे इतने आदर-सत्कारकी कदापि आशा न थी। अपने सुसज्जित कमरेमें जाकर जब मैं एक आराम-कुरसीपर बैठा तो हर्षसे विह्वल हो गया। पहाड़ियोंकी तरफसे शीतल वायुके मन्द-मन्द झोंके आ रहे थे। सामने छज्जा था। नीचे झील थी, साँपके केंचुलके सदृश और प्रकाशसे पूर्ण, और मैं, जिसे भाग्य देवीने सदैव अपना सौतेला लड़का समझा था इस समय जीवनमें पहली बार निर्विघ्न आनन्दका सुख उठा रहा था।

तीसरे पहर उन्हीं शौकीन मुन्शीजीने आकर इत्तला दी कि सरकारने याद किया है। मैंने इस बीचमें बाल बना लिये थे। तुरन्त अपना सर्वोत्तम सूट पहना और मुंशीजीके साथ सरकारकी सेवामें चला। इस समय मेरे मनमें यह शङ्का उठ रही थी कि कहीं मेरी बातचीतसे स्वामी असन्तुष्ट न हो जायँ और उन्होंने मेरे विषयमें जो विचार स्थिर किया हो उसमें कोई अन्तर न पड़ जाय। तथापि मैं अपनी योग्यताका परिचय देनेके लिए खूब तैयार था। हम कई बरामदोंसे होते अन्तमें सरकारके कमरेके दरवाजेपर पहुँचे। रेशमी परदा पड़ा हुआ था। मुन्शीजीने परदा

उठाकर मुझे इशारेसे बुलाया। मैंने काँपते हुए हृदय से कमरेमें कदम रखा और आश्चर्यसे चकित हो गया! मेरे सामने सौन्दर्यकी एक ज्वाला दीप्तिमान थी।

[३]

फूल भी सुन्दर है और दीपक भी सुन्दर है। फूलमें ठंडक और सुगन्धि है, दीपकमें प्रकाश और उद्दीपन। फूलपर भ्रमर उड़-उड़कर उसका रस लेता है, दीपकपर पतङ्ग जलकर राख हो जाता है। मेरे सामने कारचोबी मसनदपर जो सुन्दरी विराजमान थी, वह सौन्दर्यकी एक प्रकाशमय ज्वाला थी। फूलकी पँखड़ियाँ हो सकती हैं, ज्वालाको विभक्त करना असम्भव है। उसके एक एक अङ्गकी प्रशंसा करना ज्वालाको काटना है। वह नख शिख एक ज्वाला थी, वही दीपन, वही चमक, वही लालिमा, वही प्रभा। कोई चित्रकार प्रतिमा सौन्दर्यका इससे अच्छा चित्र नहीं खींच सकता था। रमणीने मेरी तरफ वात्सल्य दृष्टिसे देखकर कहा—आपको सफरमें कोई विशेष कष्ट तो नहीं हुआ?

मैंने सँभलकर उत्तर दिया—जी नहीं, कोई कष्ट नहीं हुआ।

रमणी—यह स्थान पसन्द आया?

मैंने साहसपूर्ण उत्साहके साथ जवाब दिया—ऐसा सुन्दर स्थान पृथ्वीपर न होगा। हाँ, गाइडबुक देखनेसे विदित हुआ कि यहाँका जलवायु जैसा सुखद प्रकट होता है, यथार्थमें वैसा नहीं, विषैले पशुओंकी भी शिकायत है।

यह सुनते ही रमणीका मुखसूर्य्य कान्तिहीन हो गया। मैंने तो यह चर्चा इसलिये कर दी थी, जिससे प्रकट हो जाय कि यहां

आनेमें मुझे भी कुछ त्याग करना पड़ा है, पर मुझे ऐसा मालूम हुआ कि इस चर्चासे उसे कोई विशेष दुःख हुआ। पर क्षणभरमें सूर्य्य मेघमण्डलसे बाहर निकल आया, बोली—यह स्थान अपनी रमणीयताके कारण बहुधा लोगोंकी आँखोंमें खटकता है। गुणका निरादर करनेवाले सभी जगह होते हैं और यदि जलवायु कुछ हानिकर हो भी तो आप जैसे बलवान मनुष्यको इसकी क्या चिन्ता हो सकती है। रहे विषैले जीव जन्तु, वह आपके नेत्रोंके सामने विचर रहे हैं। अगर मोर, हिरन और हंस विषैले जीव हैं तो निस्सन्देह यहाँ विषैले जीव बहुत हैं।

मुझे संशय हुआ, कहीं मेरे कथनसे उसका चित्त खिन्न न हो गया हो। गर्वसे बोला—इन गाइड बुकोंपर विश्वास करना सर्वथा भूल है।

इस वाक्यसे सुन्दरीका हृदय खिल गया, बोली—आप स्पष्ट-बादी मालूम होते हैं और यह मनुष्यका एक उच्च गुण है। मैं आपका चित्र देखते ही इतना समझ गयी थी। आपको यह सुन कर आश्चर्य होगा कि इस पदके लिये मेरे पास एक लाखसे अधिक प्रार्थनापत्र आये थे। कितने ही एम० ए० थे, कोई डी० एस० सी० थी, कोई जर्मनीसे पी० एच० डी० उपाधि प्राप्त किये हुए था, मानों यहाँ मुझे किसी दार्शनिक विषयकी जाँच करनी थी। मुझे अबकी ही यह अनुभव हुआ कि देशमें उच्च-शिक्षित मनुष्योंकी इतनी भरमार है। कई महाशयोंने स्वरचित ग्रंथोंकी नामावली लिखी थी, मानों देशमें लेखकों और पंडितों हीकी आवश्यकता है। उन्हें कालगतिका लेशमात्र भी परिचय नहीं है। प्राचीन धर्मकथायें अब केवल अन्धभक्तोंके रसास्वादन

के लिये ही हैं, उनसे और कोई लाभ नहीं है। यह भौतिक उन्नतिका समय है। आजकल लोग भौतिक सुखपर अपने प्राण अर्पण कर देते हैं। कितने ही लोगोंने अपने चित्र भी भेजे थे। कैसी-कैसी विचित्र मूर्त्तियाँ थीं जिन्हें देखकर घण्टों हँसिये। मैंने उन सभोंको एक अलबममें लगा लिया है और अवकाश मिलनेपर जब हँसनेकी इच्छा होती है तो उन्हें देखा करती हूँ। मैं उस विद्याको रोग समझती हूँ जो मनुष्यको बनमानुष बना दे। आपका चित्र देखते ही आँखें मुग्ध हो गयीं, तत्क्षण आपको बुलानेको तार दे दिया।

मालूम नहीं क्यों, अपने गुणस्वभावकी प्रशंसाकी अपेक्षा हम अपने वाह्य गुणोंकी प्रशंसासे अधिक सन्तुष्ट होते हैं और एक सुन्दरीके मुखसे तो वह चलते हुए जादूके समान है। बोला—यथासाध्य आपको मुझसे असन्तुष्ट होनेका अवसर न मिलेगा।

सुन्दरीने मेरी ओर प्रशंसापूर्ण नेत्रोंसे देखकर कहा—इसका मुझे पहले होसे विश्वास है। आइये अब कुछ कामकी बातें हो जायँ। इन घरको आप अपना ही समझिये और संकोच छोड़कर आनन्दसे रहिये। मेरे भक्तोंकी संख्या बहुत है। वह संसारके प्रत्येक भागमें उपस्थित हैं और बहुधा मुझसे अनेक प्रकारकी जिज्ञासा किया करते हैं। उन सबको मैं आपके सुपुर्द करती हूँ आपको उनमें भिन्न-भिन्न स्वभावके मनुष्य मिलेंगे। कोई मुझसे सहायता मांगता है, कोई मेरी निन्दा करता है, कोई सराहता है, कोई गालियाँ देता है। इन सब प्राणियोंको सन्तुष्ट रखना आपका काम है। देखिये यह आजके पत्रोंका ढेर है। एक

महाशय कहते हैं--बहुत दिन हुए आपकी प्रेरणासे मैं अपने बड़े भाईकी मृत्युके बाद उनकी सम्पत्तिका अधिकारी बन बैठा था। अब उनका पुत्र वयस प्राप्त कर चुका है। और मुझसे अपने पिताकी जायदाद लौटना चाहता है। इतने दिनोंतक उस सम्पत्तिका उपभोग करनेके पश्चात् अब उसका हाथसे निकालना अखर रहा है, आपकी इस विषयमें क्या सम्मति है।" इनको उत्तर दीजिये कि इस समय कूट नीतिसे काम लो, अपने भतीजेको कपट प्रेमसे मिला लो और जब वह निःशंक हो जाय तो उससे एक सादे स्टाम्पपर हस्ताक्षर करा लो। इसके पीछे पटवारी और अन्य कर्मचारियोंकी मददसे इसी स्टाम्पपर जायदादका बैनामा लिखा लो। यदि एक लगाकर दो मिलते हों तो आगा-पीछा मत करो।

यह उत्तर सुनकर मुझे बड़ा कौतूहल हुआ। नीति ज्ञानको धक्का-सा लगा। सोचने लगा, यह रमणी कौन है और क्यों ऐसे अनर्थका परामर्श देती है। ऐसे खुल्लमखुल्ला तो कोई वकील भी किसीको यह राय न देगा। उसकी ओर सन्देहात्मक भावसे देखकर बोला—यह तो सर्वथा न्यायविरुद्ध प्रतीत होता है।

कामिनी खिलखिलाकर हँस पड़ी और बोली—न्यायकी आपने भली कही। यह केवल धर्मान्ध मनुष्योंका मनसमझौता है, संसारमें इसका अस्तित्व नहीं। बाप ऋण लेकर मर जायँ, लड़का कौड़ी कौड़ी भरे। विद्वान् लोग इसे न्याय कहते हैं, मैं इसे घोर अत्याचार समझती हूं। इस न्यायके परदेमें गाँठके पूरे महाजनकी हेकड़ी साफ झलक रही है। एक डाकू किसी भद्र पुरुषके घरमें डाका मारता है, लोग उसे पकड़कर कैद कर देते

हैं, धर्मात्मा लोग इसे भी न्याय कहते हैं, किन्तु यहाँ भी वही धन और अधिकारकी प्रचण्डता है। भद्र पुरुषने कितने ही घरों को लूटा, कितनोंहीका गला दबाया और इस प्रकार धन संचय किया, किसीको भी उन्हें आँख दिखानेका साहस न हुआ। डाकूने जब उनका गला दबाया तो वह अपने धन और प्रभुत्वके बलसे उसपर वज्रप्रहार कर बैठे। मैं इसे न्याय नहीं कहती। संसारमें धन, छल, कपट, धूर्त्तताका राज्य है, यही जीवन-संग्राम है। यहाँ प्रत्येक साधन जिससे हमारा काम निकले, जिससे हम अपने शत्रुओंपर विजय पा सकें, न्यायानुकूल और उचित है। धर्मयुद्धके दिन अब नहीं रहे। यह देखिये, यह एक दूसरे सज्जनका पत्र है। वह कहते हैं—"मैने प्रथम श्रेणीमें एम० ए० पास किया, प्रथम श्रेणीमें कानूनकी परीक्षा पास की, पर अब कोई मेरी बात भी नहीं पूछता। अबतक यह आशा थी कि योग्यता और परिश्रमका अवश्य ही कुछ फल मिलेगा, पर तीन सालके अनुभवसे ज्ञात हुआ कि यह केवल धार्मिक नियम है। तीन सालमें घरकी पूँजी भी खा चुका। अब विवश होकर आपकी शरण लेता हूँ। मुझ हतभाग्य मनुष्यपर दया कीजिये और मेरा बेड़ा पार लगाइये।" इनको उत्तर दीजिये कि जाली दस्तावेजें बनवाइये और झूठे दावे चलाकर उनकी डिगरी करा लीजिये। थोड़े ही दिनोंमें आपका क्लेश निवारण हो जायगा। यह देखिये एक सज्जन और कहते हैं—"लड़की सयानी हो गयी है, जहाँ जाता हूँ लोग दायजकी गठरी माँगते हैं, यहाँ पेटकी रोटियोंका भी ठिकाना नहीं, किसी तरह भलमनसी निभा रहा हूँ, चारों ओर निन्दा हो रही है, जो

आज्ञा हो उसका पालन करूँ।" इन्हें लिखिये कन्याका विवाह किसी बुड्ढे खुर्राट सेठसे कर दीजिए। वह दायज लेनेकी जगह कुछ उल्टे और दे जायगा। अब आप समझ गये होंगे कि ऐसे जिज्ञासुओंको किस ढंगसे उत्तर देनेकी आवश्यकता है। उत्तर संक्षिप्त होना चाहिये, बहुत टीका-टिप्पणी व्यर्थ होती है। अभी कुछ दिनोंतक आपको यह काम कठिन जान पड़ेगा; पर आप चतुर मनुष्य हैं, शीघ्र ही आपको इस कामका अभ्यास हो जायगा। तब आपको मालूम होगा कि इससे सहज और कोई उपाय नहीं है। आपके द्वारा सैकड़ों दारुण दुःख भोगनेवालोंका कल्याण होगा और वह आजन्म आपका यश गायेंगे।

[४]

मुझे यहाँ रहते एक महीनेसे अधिक हो गया, पर अबतक मुझपर यह रहस्य न खुला कि यह सुन्दरी कौन है? मैं किसका सेवक हूँ? इसके पास इतना अतुल धन, ऐसी-ऐसी विलासकी सामग्रियाँ कहांसे आती हैं? जिधर देखता था, ऐश्वर्य हीका आडम्बर दिखाई देता था। मेरे आश्चर्यकी सीमा न थी मानों किसी तिलिस्ममें फँसा हूँ। इन जिज्ञासुओंका इस रमणीसे क्या सम्बन्ध है, यह भेद भी न खुलता था। मुझे नित्य उससे साक्षात् होता था, उसके सम्मुख आते ही मैं अचेत-सा हो जाता था। उसकी चितवनोंमें एक प्रबल आकर्षण था जो मेरे प्राणोंको खींच लिया करता था। मैं वाक्य शून्य हो जाता, केवल छिपी हुई आँखोंसे उसे देखा करता था। पर मुझे उसके मृदुल मुस्कान और रसमयी आलोचनाओं तथा मधुर, काव्यमय भावोंमें प्रेमा-

नन्दकी जगह एक प्रबल मानसिक अशान्तिका अनुभव होता था। उसकी चितवनें केवल हृदयको बाणोंके समान छेदती थीं, उसके कटाक्ष चित्तको व्यस्त करते थे। शिकारी अपने शिकारको खेलानेमें जो आनन्द पाता है वही उस परम सुन्दरीको मेरी प्रेमातुरतामें प्राप्त होता था। वह एक सौन्दर्य ज्वाला थी और ज्वाला जलानेके सिवाय और क्या कर सकती है। तिसपर भी मैं पतंगकी भांति उस ज्वालापर अपनेको समर्पण करना चाहता था। यही आकांक्षा होती थी कि उन पद-कमलोंपर सिर रखकर प्राण दे दूं। यह केवल उपासककी भक्ति थी, काम और वासनाओं-से शून्य।

कभी-कभी जब वह संध्या समय अपने मोटर बोटपर बैठ-कर सागरकी सैर करती तो ऐसा जान पड़ता मानो चन्द्रमा आकाश-लालिमामें तैर रहा है। मुझे इस दृश्यमें अनुपम सुख प्राप्त होता था।

मुझे अब अपने नियत कार्योंमें खूब अभ्यास हो गया था। मेरे पास प्रतिदिन पत्रोंका एक पोथा पहुँच जाता था। मालूम नहीं किस डाकसे आता था। लिफाफोंपर कोई मोहर न होती थी। मुझे इन जिज्ञासुओंमें बहुधा वह लोग मिलते थे जिनका मेरी दृष्टिमें बड़ा आदर था, कितने ही ऐसे महात्मा थे जिनमें मुझे श्रद्धा थी। बड़े-बड़े विद्वान लेखक और अध्यापक, बड़े-बड़े ऐश्वर्यवान रईस, यहाँतक कि कितने ही धर्मके आचार्य, नित्य अपनी राम कहानी सुनाते थे। उनकी दशा अत्यन्त करुणाजनक थी। वह सब-के-सब मुझे रंगे हुए सियार दिखाई देते थे। जिन लेखकोंको मैं अपनी भाषाका स्तम्भ समझता था उनसे

घृणा होने लगी। वह केवल उचक्के थे, जिनकी सारी कीर्त्ति चोरी, अनुवाद और कतर व्योंतपर निर्भर थी। जिन धर्मके आचार्य्योंको मैं पूज्य समझता था वह स्वार्थ, तृष्णा और घोर नीचताके दलदलमें फँसे हुए दिखाई देते थे। मुझे धीरे-धीरे यह अनुभव हो रहा था कि संसारकी उत्पत्तिमे अबतक. लाखों शताब्दियाँ बीत जानेपर भी मनुष्य वैसा ही क्रूर, वैसा ही वासनाओंका गुलाम बना हुआ है। बल्कि उस समयके लोग सरल प्रकृतिके कारण इतने कुटिल, दुराग्रहोंमें इतने चालाक न होते थे।

एक दिन सन्ध्या समय उस रमणीने मुझे बुलाया। मैं अपने घमण्डमें यह समझता था कि मेरे बांकेपनका कुछ-न-कुछ असर उसपर भी होता है। अपना सर्वोत्तम सूट पहना, बाल सँवारे और विरक्त भावसे जाकर बैठ गया। यदि वह मुझे अपना शिकार बना कर खेलती थी तो मैं भी शिकार बनकर उसे खेलाना चाहता था।

ज्योंहीं मैं पहुँचा उस लावण्यमयीने मुस्कराकर मेरा स्वागत किया, पर मुख चन्द्र कुछ मलीन था। मैंने अधीर होकर पूछा—सरकारका जी तो अच्छा है?

उसने निराशभावसे उत्तर दिया—जी हाँ, एक महीनेसे एक कठिन रोगमें फँस गयी हूँ। अबतक किसी भाँति अपनेको संभाल सकी हूँ, पर अब रोग असाध्य होता जाता है। उसकी औषधि एक निर्दय मनुष्यके पास है। वह मुझे प्रति दिन तड़पते देखता है पर उसका पाषाण-हृदय जरा भी नहीं पसीजता।

मैं इशारा समझ गया। सारे शरीरमें एक बिजली-सी दौड़ गयी। सांस बड़े वेगसे चलने लगी। एक उन्मत्तताका अनुभव होने लगा। निर्भय होकर बोला—सम्भव है जिसे आपने निर्दय समझ रखा हो वह भी आपको ऐसा ही समझता हो और भयसे मुँह खोलनेका साहस न कर सकता हो।

सुन्दरीने कहा—तो कोई ऐसा उपाय बताइये जिससे दोनों ओरकी आग बुझे। प्रियतम! अब मैं अपने हृदयकी दहकती हुई विरहाग्निको नहीं छिपा सकती। मेरा सर्वस्व आपको भेंट है। मेरे पास वह खजाने हैं जो कभी खाली न होंगे, मेरे पास वह साधन हैं जो आपको कीर्तिके शिखरपर पहुँचा देंगे। मैं समस्त संसारको आपके पैरोंपर झुका सकती हूँ। बड़े बड़े सम्राट भी मेरी आज्ञाको नहीं टाल सकते। मेरे पास वह मन्त्र है जिससे मैं मनुष्यके मनोवेगोंको क्षणमात्रमें पलट सकती हूँ। आइये मेरे हृदयसे लिपट कर इस दाह-क्रान्तिको शान्त कीजिये।

रमणीके चेहरेपर जलती हुई आगकी-सी कान्ति थी। वह दोनों हाथ फैलाये कामोन्मत्त होकर मेरी ओर बढ़ी। उसकी आँखोंसे आगकी चिनगारियाँ निकल रही थीं। परन्तु जिस प्रकार अग्निसे पारा दूर भागता है उसी प्रकार मैं भी उसके सामनेसे एक कदम पीछे हट गया। उसकी इस प्रेमातुरतासे मैं भयभीत हो गया, जैसे कोई निर्धन मनुष्य किसीके हाथोंसे सोनेकी ईंट लेते हुए भयभीत हो जाय। मेरा चित्त एक अज्ञात आशंकासे काँप उठा। रमणीने मेरी ओर अग्निमय नेत्रोंसे देखा मानों किसी सिंहनीके मुँहसे उसका आहार छिन जाय। और सरोष होकर बोली—यह भीरुता क्यों?

मैं—मैं आपका एक तुच्छ सेवक हूँ, इस महान आदरका पात्र नहीं।

रमणी—आप मुझसे घृणा करते हैं।

मैं—यह आपका मेरे साथ अन्याय है। मैं इस योग्य भी तो नहीं कि आपके तलुओंको आँखोंसे लगाऊँ। आप दीपक हैं, मैं पतंग हूँ, मेरे लिए इतना ही बहुत है।

रमणी नैराश्यपूर्ण क्रोधके साथ बैठ गयी और बोली—वास्तवमें आप निर्दयी हैं. मैं ऐसा न समझती थी। आपमें अभीतक अपनी शिक्षाके कुसंस्कार लिपटे हुए हैं, पुस्तकों और सदाचारकी बेड़ी आपके पैरोंसे नहीं निकली।

मैं शीघ्र ही अपने कमरेमें चला आया और चित्तके स्थिर होनेपर जब मैं इस घटनापर विचार करने लगा तो मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मैं अग्नि-कुण्डमें गिरते-गिरते बचा। कोई गुप्त शक्ति मेरी सहायक हो गयी। यह गुप्त शक्ति क्या थी?

[५]

मैं जिस कमरेमें ठहरा हुआ था उसके सामने झीलके दूसरी तरफ एक छोटा-सा झोंपड़ा था। उसमें एक वृद्ध पुरुष रहा करते थे। उनकी कमर तो झुक गयी थी पर चेहरा तेजमय था। वह कभी कभी इस महलमें आया करते थे। रमणी न जाने क्यों उनसे घृणा करती थी, मनमें उनसे डरती थी। उन्हें देखतेही घबरा जाती, मानों किसी असमंजसमें पड़ी हुई है। उसका मुख फीका पड़ जाता, जाकर अपने किसी गुप्त स्थानमें मुँह छिपा लेती, मुझे उसकी यह दशा देखकर कौतूहल होता था कई बार उसने मुझसे भी उनकी चर्चा की थी, पर अत्यन्त अपमानके भावसे, वह

मुझे उनसे दूर-दूर रहनेका उपदेश दिया करती और यदि कभी मुझे उनसे बातें करते देख लेती तो उसके माथेपर बल पड़ जाते थे। कई दिनोंतक मुझसे खुलकर न बोलती थी।

उस रातको मुझे देरतक नींद नहीं आयी। उधेड़बुनमें पड़ा हुआ था। कभी जी चाहता आओ आँख बन्द करके प्रेमरसका पान करें, संसारके पदार्थोंका सुख भोगें, जो कुछ होगा देखा जायगा। जीवनमें ऐसे दिव्य अवसर कहाँ मिलते हैं। फिर आप ही-आप मन कुछ खिंच जाता था, घृणा उत्पन्न हो जाती थी।

रातके दस बजे होंगे कि हठात् मेरे कमरेका द्वार आप ही-आप खुल गया और वही तेजस्वी पुरुष अन्दर आये। यद्यपि मैं अपनी स्वामिनीके भयसे उनसे बहुत कम मिलता था पर उनके मुखपर ऐसी शांति थी और उनके भाव ऐसे पवित्र तथा कोमल थे कि हृदयमें उनके सतसंगकी उत्कण्ठा होती थी। मैंने उनका स्वागत किया और लाकर एक कुरसीपर बैठा दिया। उन्होंने मेरी ओर दयापूर्ण भावसे देखकर कहा—मेरे आनेसे तुम्हें कष्ट तो नहीं हुआ ?

मैंने सिर झुकाकर उत्तर दिया—आप जैसे महात्माओंका दर्शन मेरे सौभाग्यकी बात है।

महात्माजी निश्चिन्त होकर बोले—अच्छा, तो सुनो और सचेत हो जाओ, मैं तुम्हें यही चेतावनी देनेके लिये आया हूं। तुम्हारे ऊपर एक घोर विपत्ति आनेवाली है। तुम्हारे लिये इस समय इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं है कि यहांसे चले जाओ, यदि मेरी बात न मानोगे तो जीवन पर्यन्त कष्ट झेलोगे और इस माया-जालसे कभी मुक्त न हो

सकोगे। मेरा झोपड़ा तुम्हारे सामने था, मैं भी कभी-कभी यहाँ आया करता था पर तुमने मुझसे मिलनेकी आवश्यकता न समझी। यदि पहले ही दिन तुम मुझसे मिलते तो सहस्रों मनुष्योंका सर्वनाश करनेके अपराधसे बच जाते। निसन्देह तुम्हारे पूर्व कर्मोंका फल था जिसने आज तुम्हारी रक्षा की। अगर यह पिशाचिनी एक बार तुमसे प्रेमालिंगन कर लेती तो फिर तुम कहींके न रहते। तुम उसी दम उसके अजायब खानेमें भेज दिये जाते। वह जिसपर रीझती है उसकी यही गत बनाती है। यही उसका प्रेम है। चलो जरा इस अजायब खानेकी सैर करो तब तुम समझोगे कि आज तुम किस आफत से बचे।

यह कहकर महात्माजीने दीवारमें एक बटन दबाया। तुरन्त एक दरवाजा निकल आया। यह नीचे उतरनेकी सीढ़ी थी। महात्मा उसमें घुसे और मुझे भी बुलाया। घोर अन्धकारमें कई कदम उतरनेके बाद एक बड़ा कमरा नजर आया। उसमें एक दीपक टिमटिमा रहा था। वहाँ मैंने जो घोर वीभत्स और हृदय विदारक दृश्य देखे उसका स्मरण करके आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इटैलीके अमरकवि "डैन्टी" ने नर्कका जो दृश्य दिखाया है उससे कहीं भयावह, रोमांचकारी तथा नारकीय दृश्य मेरी आँखोंके सामने उपस्थित था; सैकड़ों विचित्र देहधारी नाना प्रकारकी अशुद्धताओंमें लिपटे हुए, भूमिपर पड़े कराह रहे थे। उनके शरीर मनुष्योंके-से थे, लेकिन चेहरोंका रूपान्तर हो गया था। कोई कुत्तेसे मिलता था, कोई गीदड़से, कोई बन बिलावसे, कोई साँपसे। एक स्थानपर एक मोटा स्थूल मनुष्य,

एक दुर्बल, शक्तिहीन मनुष्यके गलेमें मुंह लगाये उसका रक्त चूस रहा था। एक ओर दो गिद्धकी सूरतवाले मनुष्य एक सड़ी हुई लाशपर बैठे उसका मांस नोच रहे थे। एक जगह एक अजगरकी सूरतका मनुष्य एक बालकको निगलना चाहता था, पर बालक उसके गलेमें अटका हुआ था। दोनों ही जमीनपर पड़े छटपटा रहे थे। एक जगह मैंने एक अत्यन्त पैशाचिक घटना देखी। दो नागिनकी सूरतवाली स्त्रियाँ एक भेड़ियेकी सूरतवाले मनुष्यके गलेमें लिपटी हुई उसे काट रही थीं। वह मनुष्य घोर वेदनासे चिल्ला रहा था। मुझसे अब और न देखा गया। तुरन्त वहांसे भागा और गिरता-पड़ता अपने कमरेमें आकर दम लिया। महात्माजी भी मेरे साथ चले आये। जब मेरा चित्त शान्त हुआ तो उन्होंने कहा—तुम इतनी जल्दी घबरा गये, अभी तो इस रहस्यका एक भाग भी नहीं देखा। यह तुम्हारी स्वामिनीके विहारका स्थान है और यही उनके पालतू जीव हैं। इन जीवोंके पिशाचाभिनय देखनेमें उनका विशेष मनोरंजन होता है। यह सभी मनुष्य किसी समय तुम्हारे ही समान प्रेम और प्रमोदके पात्र थे, पर आज उनकी यह दुर्गति हो रही है। अब तुम्हें मैं यही सलाह देता हूँ कि इसी दम यहांसे भागो नहीं तो रमणीके दूसरे वारसे कदापि न बचोगे।

यह कहकर वह महात्मा अदृश्य हो गये। मैंने भी अपनी गठरी बाँधी और अर्ध रात्रिके सन्नाटेमें चोरोंकी भांति कमरेसे बाहर निकला। शीतल आनन्दमय समीर चल रही थी, सामनेके सागरमें तारे छिटक रहे थे, मेंहदीकी सुगन्धि उड़ रही थी। मैं चलनेको तो चला पर संसार-सुख भोगका ऐसा सुअवसर छोड़ते

हुए दुःख होता था। इतना देखने और महात्माके उपदेश सुननेपर भी चित्त उस रमणीकी ओर खिंचता था। मैं कई बार चला, कई बार लौटा, पर अन्तमें आत्माने इन्द्रियोंपर विजय पायी। मैंने सीधा मार्ग छोड़ दिया और झीलके किनारे-किनारे गिरता पड़ता कीचड़में फँसता हुआ सड़कतक आ पहुँचा। यहाँ आकर मुझे एक विचित्र उल्लास हुआ मानों कोई चिड़िया बाजके चंगुलसे छूट गयी हो।

यद्यपि मैं एक मासके बाद लौटा था पर अब जो देखा तो अपनी चारपाई पर पड़ा हुआ था। कमरेमें जरा भी गर्द या धूल न थी। मैंने लोगोंसे इस घटनाकी चर्चाकी तो लोग खूब हँसे और मित्रगण तो अभीतक मुझे "प्राइवेट सेक्रेटरी" कहकर बनाया करते हैं। सभी कहते हैं कि मैं एक मिनटके लिये भी कमरेसे बाहर न निकला, महीने भर गायब रहनेकी तो बात ही क्या। इसलिए अब मुझे भी विवश होकर यही कहना पड़ता है कि शायद मैंने कोई स्वप्न देखा है। कुछ भी हो, परमात्माको कोटि धन्यवाद देता हूँ कि मैं उस पापकुण्डसे बचकर निकल आया। वह चाहे स्वप्न ही हो पर मैं उसे अपने जीवनका एक वास्तविक अनुभव समझता हूँ क्योंकि उसने सदैवके लिए मेरी आँखें खोल दीं।

महातीर्थ—

[१]

मुंशी इन्द्रमणिकी आमदनी कम थी और खर्च ज्यादा। अपने बच्चेके लिये दाई रखनेका खर्च न उठा सकते थे। लेकिन एक तो बच्चेकी सेवा शुश्रूषाकी फिक्र और दूसरे अपने बराबर-वालोंसे हेठे बनकर रहनेका अपमान; इस खर्चको सहनेपर मजबूर करता था। बच्चा दाईको बहुत चाहता था, हरदम उसके गलेका हार बना रहता था। इसलिये दाई और भी जरूरी मालूम होती थी, पर शायद सबसे बड़ा कारण यह था कि वह मुरौवतके वश दाईको जवाब देनेका साहस नहीं कर सकते थे। बुढ़िया उनके यहाँ तीन सालसे नौकर थी। उसने उनके एकलौते लड़के-का लालन पालन किया था। अपना काम बड़ी मुस्तैदी और परिश्रमसे करती थी। उसे निकालनेका कोई बहाना नहीं था और व्यर्थ खुचड़ निकालना इन्द्रमणि जैसे भले आदमी के स्वभावके विरुद्ध था, पर सुखदा इस सम्बन्धमें अपने पतिसे सहमत न थी। उसे सन्देह था कि दाई हमें लूटे लेती है। जब दाई बाजारसे लौटती तो वह दालानमें छिपी रहती कि देखूँ आटा कहीं छिपाकर तो नहीं रख देती, लकड़ी तो नहीं छिपा देती। उसकी लाई हुई चीजोंको घण्टों देखती, पूछताछ करती। बार-बार पूछती, इतना ही क्यों? क्या भाव है? क्या इतना मँहगा हो गया? दाई कभी तो इन सन्देहात्मक प्रश्नोंका उत्तर नम्रतापूर्वक देती किन्तु जब कभी बहूजी ज्यादा तेज हो जातीं तो वह भी कड़ी

पड़ जाती थी। शपथें खाती। सफाईकी शहादतें पेश करती। वादविवादमें घण्टों लग जाते थे। प्रायः नित्य यही दशा रहती थी और प्रतिदिन यह नाटक दाईके अश्रुपातके साथ समाप्त होता था। दाईका इतनी सख्तियाँ झेलकर पड़े रहना सुखदाके सन्देह-को और भी पुष्ट करता था। उसे कभी विश्वास नहीं होता था कि यह बुढ़िया केवल बच्चेके प्रेमवश पड़ी हुई है। वह बुढ़ियाको इतनी बाल-प्रेम-शीला नहीं समझती थी।

[२]

संयोगसे एक दिन दाईको बाजारसे लौटने में जरा देर हो गयी। वहाँ दो कुँजड़िनोंमें देवासुर संग्राम मचा था। उनका चित्रमय हाव-भाव, उनका आग्नेय तर्क-वितर्क, उनके कटाक्ष और व्यङ्ग सब अनुपम थे। विषके दो नद थे या ज्वालाके दो पर्वत, जो दोनों तरफसे उमड़कर आपसमें टकरा गये थे! क्या वाक्य प्रवाह था, कैसी विचित्र विवेचना! उनका शब्द बाहुल्य, उनकी मार्मिक विचारशीलता, उनके अलंकृत शब्द-विन्यास और उनकी उपमाओंकी नवीनतापर ऐसा कौन सा कवि है जो मुग्ध न हो जाता। उनका धैर्य, उनकी शान्ति विस्मयजनक थी। दर्शकोंकी एक खासी भीड़ थी। वह लाजको भी लज्जित करनेवाले इशारे, वह अश्लील शब्द जिनसे मलिनताके भी कान खड़े होते, सहस्रों रसिकजनोंके लिये मनोरंजनकी सामग्री बने हुए थे।

दाई भी खड़ी हो गयी कि देखूँ क्या मामला है। तमाशा इतना मनोरंजक था कि उसे समयका बिलकुल ध्यान न रहा।

यकायक जब नौके घण्टेकी आवाज कानमें आयी तो चौंक पड़ी और लपकी हुई घरकी ओर चली।

सुखदा भरी बैठी थी। दाईको देखते ही त्यौरी बदलकर बोली—क्या बाजारमें खो गयी थी।

दाई विनयपूर्ण भावसे बोली—एक जान-पहचानकी महरीसे भेंट हो गयी। वह बातें करने लगी।

सुखदा इस जवाबसे और भी चिढ़कर बोली—यहाँ दफ्तर जानेको देर हो रही है और तुम्हें सैर सपाटेकी सूझती है।

परन्तु दाईने इस समय दबने हीमें कुशल समझी, बच्चेको गोदमें लेने चली, पर सुखदाने झिड़ककर कहा—रहने दो, तुम्हारे बिना वह व्याकुल नहीं हुआ जाता।

दाईने इस आज्ञाको मानना आवश्यक नहीं समझा। बहूजी का क्रोध ठण्ढा करनेके लिये इससे उपयोगी और कोई उपाय न सूझा। उसने रुद्रमणिको इशारेसे अपने पास बुलाया। वह दोनों हाथ फैलाये लड़खड़ाता हुआ उसकी ओर चला। दाईने उसे गोदमें उठा लिया और दरवाजेकी तरफ चली। लेकिन सुखदा बाजकी तरह झपटी और रुद्रको उसकी गोदसे छीनकर बोली—तुम्हारी यह धूर्तता बहुत दिनोंसे देख रही हूँ। यह तमाशे किसी औरको दिखाइयो। यहाँ जी भर गया।

दाई रुद्रपर जान देती थी और समझती थी कि सुखदा इस बातको जानती है। उसकी समझमें सुखदा और उसके बीच यह ऐसा मजबूत सम्बन्ध था जिसे साधारण झटके तोड़ न सकते थे। यही कारण था कि सुखदाके कटुवचनोंको सुनकर भी उसे

यह विश्वास न होता था कि मुझे निकालनेपर प्रस्तुत है। पर सुखदाने यह बातें कुछ ऐसी कठोरतासे कहीं और रुद्रको ऐसी निर्दयतासे छीन लिया कि दाईसे सह्य न हो सका। बोली—बहूजी! मुझसे कोई बड़ा अपराध तो नहीं हुआ, बहुत तो पाव घण्टेकी देर हुई होगी। इसपर आप इतना बिगड़ रही हैं तो साफ क्यों नहीं कह देतीं कि दूसरा दरवाजा देखो। नारायणने पैदा किया है तो खानेको भी देगा। मजदूरी का अकाल थोड़े ही है।

सुखदाने कहा—तो यहाँ तुम्हारी परवाह ही कौन करता है। तुम्हारी जैसी लौंडिनें गली-गली ठोकरें खाती फिरती हैं।

दाईने जवाब दिया—हां नारायण आपको कुशलसे रखें। लौंडिनें और दाइयां आपको बहुत मिलेंगी। मुझसे जो कुछ अपराध हो क्षमा कीजियेगा। मैं जाती हूँ।

सुखदा—जाकर मरदानेमें अपना हिसाब कर लो।

दाई—मेरी तरफसे रुद्र बाबूको मिठाइयां मँगवा दीजियेगा।

इतनेमें इन्द्रमणि भी बाहरसे आ गये, पूछा—क्या है क्या?

दाईने कहा—कुछ नहीं। बहूजीने जवाब दे दिया है, घर जाती हूँ।

इन्द्रमणि गृहस्थीके जंजालसे इस तरह बचते थे जैसे कोई नंगे पैरवाला मनुष्य कांटोंसे बचे। उन्हें सारे दिन एक ही जगह खड़े रहना मंजूर था, पर कांटोंमें पैर रखनेकी हिम्मत न थी। खिन्न होकर बोले—बात क्या हुई?

सुखदाने कहा—कुछ नहीं। अपनी इच्छा। जी नहीं चाहता, नहीं रखते। किसीके हाथों बिक तो नहीं गये।

इन्द्रमणिने झुंझलाकर कहा—तुम्हें बैठे-बैठाये एक-न-एक खुचड़ सूझती ही रहती है।

सुखदाने तिनककर कहा—हाँ, मुझे तो इसका रोग है। क्या करूँ, स्वभाव ही ऐसा है। तुम्हें यह बहुत प्यारी है तो ले जाकर गलेमें बांध लो, मेरे यहां जरूरत नहीं है।

[३]

दाई घरसे निकली तो आंखें डबडबाई हुई थीं। हृदय रुद्र-मणिके लिये तड़प रहा था। जी चाहता था कि एक बार बालकको लेकर प्यार कर लूँ। पर यह अभिलाषा लिये हुए ही उसे घरसे बाहर निकलना पड़ा।

रुद्रमणि दाईके पीछे-पीछे दरवाजे तक आया, पर दाईने जब दरवाजा बाहरसे बन्द कर दिया तो वह मचलकर जमीनपर लोट गया और अन्ना-अन्ना कहकर रोने लगा। सुखदाने चुमकारा, प्यार किया, गोदमें लेनेकी कोशिश की, मिठाई देनेका लालच दिया, मेला दिखानेका वादा किया, इससे जब काम न चला तो बन्दर, सिपाही, लूलू और हौआकी धमकी दी। पर रुद्रने वह रौद्र भाव धारण किया, कि किसी तरह चुप न हुआ। यहाँतक कि सुखदाको क्रोध आ गया, बच्चेको वहीं छोड़ दिया और आकर घरके धन्धेमें लग गयी। रोते-रोते रुद्रका मुंह और गाल लाल हो गये, आँखें सूज गयीं। निदान वह वहीं जमीनपर सिसकते-सिसकते सो गया।

सुखदाने समझा था कि बच्चा थोड़ी देरमें रो-धोकर चुप हो जायगा। पर रुद्रने जागते ही अन्नाकी रट लगायी। तीन बजे

इन्द्रमणि दफ्तरसे आये और बच्चेकी यह दशा देखी तो स्त्रीकी तरफ कुपित नेत्रोंसे देखकर उसे गोदमें उठा लिया और बहलाने लगे। जब अन्तमें रुद्रको यह विश्वास हो गया कि दाई मिठाई लेने गयी है तो उसे सन्तोष हुआ।

परन्तु शाम होते ही उसने फिर झाखना शुरू किया—अन्ना! मिठाई ला।

इस तरह दो-तीन दिन बीत गये। रुद्रको अन्नाकी रट लगाने और रोनेके सिवा और कोई काम न था। वह शान्तप्रकृति कुत्ता जो उसकी गोदसे एक क्षणके लिये भी न उतरता था, वह मौनव्रतधारी बिल्ली जिसे ताखपर देखकर वह खुशीसे फूला न समाता था, वह पङ्खहीन चिड़िया जिसपर वह जान देता था, सब उसके चित्तसे उतर गये। वह उनकी तरफ आँख उठाकर भी न देखता। अन्ना जैसी जीती जागती, प्यार करनेवाली, गोदमें लेकर घुमानेवाली, थपक-थपककर सुलानेवाली, गा-गाकर खुश करनेवाली चीजका स्थान उन निर्जीव चीजोंसे पूरा न हो सकता था। वह अकसर सोते सोते चौंक पड़ता और अन्ना-अन्ना पुकारकर हाथोंसे इशारा करता, मानों उसे बुला रहा है। अन्ना-की खाली कोठरीमें घंटों बैठा रहता। उसे आशा होती कि अन्ना यहाँ आती होगी। इस कोठरीका दरवाजा खुलते सुनता तो अन्ना! अन्ना! कहकर दौड़ता। समझता कि अन्ना आ गयी। उसका भरा हुआ शरीर घुल गया, गुलाब जैसा चेहरा सूख गया, माँ और बाप उसकी मोहनी हँसीके लिये तरस कर रह जाते थे। यदि बहुत गुदगुदाने या छेड़नेसे हँसता भी तो ऐसा जान पड़ता था कि दिलसे नहीं हँसता, केवल दिल रखनेके लिये हँस

रहा है। उसे अब दूधसे प्रेम नहीं था न मिश्रीसे, न मेवेसे, न मीठे बिस्कुटसे, न ताजी इमरतीसे। उनमें मजा तब था जब अन्ना अपने हाथोंसे खिलाती थी। अब उनमें मजा नहीं था। दो सालका लहलहाता हुआ सुन्दर पौधा मुर्झा गया। वह बालक जिसे गोदमें उठाते ही नरमी, गरमी और भारीपनका अनुभव होता था, अब सूखकर काँटा हो गया था। सुखदा अपने बच्चेकी यह दशा देखकर भीतर ही भीतर कुढ़ती और अपनी मूर्खतापर पछताती। इन्द्रमणि जो शान्तिप्रिय आदमी थे अब बालकको गोदसे अलग न करते थे, उसे रोज साथ हवा खिलाने ले जाते थे, नित्य नये खिलौने लाते थे, पर वह मुर्झाया हुआ पौधा किसी तरह भी न पनपता था। दाई उसके लिये संसारका सूर्य थी। उस स्वाभाविक गर्मी और प्रकाशसे वंचित रहकर हरियालीकी बहार कैसे दिखाता? दाईके बिना उसे अब चारों ओर अन्धेरा और सन्नाटा दिखाई देता था। दूसरी अन्ना तीसरे ही दिन रख ली गयी थी। पर रुद्र उसकी सूरत देखते ही मुँह छिपा लेता था मानों वह कोई डाइन या चुड़ैल है।

प्रत्यक्ष रूपमें दाईको न देखकर रुद्र अब उसकी कल्पनामें मग्न रहता। वहाँ उसकी अन्ना चलती-फिरती दिखाई देती थी। उसके वही गोद थी, वही स्नेह, वही प्यारी-प्यारी बातें, वही प्यारे गाने, वही मजेदार मिठाइयाँ, वही सुहावना संसार, वही आनन्दमय जीवन। अकेले बैठकर कल्पित अन्नासे बातें करता, अन्ना, कुत्ता भूके। अन्ना, गाय दूध देती। अन्ना, उजला-उजला घोड़ा दौड़े। सवेरा होते ही लोटा लेकर दाईकी कोठरीमें जाता और कहता—अन्ना, पानी। दूधका गिलास लेकर उसकी

कोठरी में रख आता और कहता—अन्ना दूध पिला। अपनी चारपाईपर तकिया रखकर चादरसे ढाँक देता और कहता—अन्ना, सोती है। सुखदा जब खाने बैठती तो कटोरे उठा उठाकर अन्नाकी कोठरीमें ले जाता और कहता—अन्ना खाना खायगी। अन्ना अब उसके लिये एक स्वर्गकी वस्तु थी जिसके लौटनेकी अब उसे बिलकुल आशा न थी। रुद्रके स्वभावमें धीरे-धीरे बालकोंकी चपलता और सजीवताकी जगह एक निराशाजनक धैर्य, एक आनन्द विहीन शिथिलता दिखाई देने लगी। इस तरह तीन हफ्ते गुजर गये। बरसातका मौसिम था। कभी बेचैन करने वाली गर्मी, कभी हवाके ठंडे झोंके। बुखार और जोकामका जोर था। रुद्रकी दुर्बलता इस ऋतु परिवर्तनको बर्दास्त न कर सकी। सुखदा उसे फलालैनका कुर्ता पहनाये रखती थी। उसे पानीके पास नहीं जाने देती। नंगे पैर एक कदम भी नहीं चलने देती। पर सर्दी लग ही गयी। रुद्रको खाँसी और बुखार आने लगी।

[४]

प्रभातका समय था। रुद्र चारपाईपर आँख बन्द किये पड़ा था। डाक्टरोंका इलाज निष्फल हुआ। सुखदा चारपाईपर बैठी उसकी छातीमें तेलकी मालिश कर रही थी और इन्द्रमणि विषादकी मूर्त्ति बने हुए करुणापूर्ण आँखोंसे बच्चेको देख रहे थे। इधर सुखदासे बहुत कम बोलते थे। उन्हें उससे एक तरहकी घृणा-सी हो गयी थी। वह रुद्रकी बीमारीका एकमात्र कारण उसीको समझते थे। वह उनकी दृष्टिमें बहुत नीच स्वभावकी स्त्री थी।

सुखदाने डरते-डरते कहा—आज बड़े हकीम साहबको बुला लेते, शायद उनकी दवासे फायदा हो।

इन्द्रमणिने काली घटाओंकी ओर देखकर रुखाईसे जवाब दिया—बड़े हकीम नहीं यदि धन्वन्तरि भी आवें तो भी उसे कोई फायदा न होगा।

सुखदाने कहा—तो क्या अब किसीकी दवा न होगी ?

इन्द्रमणि—बस; इसकी एक ही दवा है और अलभ्य है

सुखदा · तुम्हें तो बस वही धुन सवार है। क्या बुढ़िया आकर अमृत पिला देगी ?

इन्द्रमणि—वह तुम्हारे लिये चाहे विष हो पर लड़केके लिये अमृत ही होगी।

सुखदा—मैं नहीं समझती कि ईश्वरेच्छा उसके अधीन है।

इन्द्रमणि--यदि नहीं समझती हो और अबतक नहीं समझी तो रोओगी। बच्चेसे हाथ धोना पड़ेगा।

सुखदा--चुप भी रहो, क्या अशुभ मुंहसे निकालते हो। यदि ऐसी ही जली कटी सुनाना है तो बाहर चले जाओ।

इन्द्रमणि तो मैं जाता हूं। पर याद रखो, यह हत्या तुम्हारी ही गर्दनपर होगी। यदि लड़केको तन्दुरुस्त देखना चाहती हो तो उसी दाईके पास जाओ, उससे विनती और प्रार्थना करो, क्षमा मांगो। तुम्हारे बच्चेकी जान उसीकी दयाके अधीन है।

सुखदाने कुछ उत्तर नहीं दिया। उसकी आँखोंसे आँसू जारी थे।

इन्द्रमणिने पूछा--क्या मर्जी है, जाऊँ उसे बुला लाऊँ।

सुखदा--तुम क्यों जाओगे, मैं आप चली जाऊँगी।

इन्द्रमणि—नहीं, क्षमा करो। मुझे तुम्हारे ऊपर विश्वास नहीं है। न जाने तुम्हारी जबानसे क्या निकल पड़े कि जो वह आती भी हो तो न आवे।

सुखदाने पतिकी ओर फिर तिरस्कारकी दृष्टिसे देखा और बोली—हाँ और क्या, मुझे अपने बच्चेकी बीमारीका शोक थोड़े ही है। मैंने लाजके मारे तुमसे कहा नहीं, पर मेरे हृदयमें यह बात बार-बार उठी है। यदि मुझे दाईके मकानका पता मालूम होता तो मैं कब ही उसे मना लायी होती। वह मुझसे कितनी ही नाराज हो पर रुद्रसे उसे प्रेम था। मैं आज ही उसके पास जाऊँगी। तुम विनती करनेको कहते हो मैं उसके पैरों पड़नेके लिये तैयार हूँ। उसके पैरोंको आँसुओंसे भिगोऊँगी और जिस तरह राजी होगी राजी करूँगी।

सुखदाने बहुत धैर्य धरकर यह बातें कहीं, परन्तु उमड़े हुए आँसू अब न रुक सके। इन्द्रमणिने स्त्रीकी ओर सहानुभूति पूर्वक देखा और लज्जित हो बोले—मैं तुम्हारा जाना उचित नहीं समझता। मैं खुद ही जाता हूँ।

[५]

कैलासी संसारमें अकेली थी। किसी समय उसका परिवार गुलाबकी तरह फूला हुआ था। परन्तु धीरे-धीरे उसकी सब पत्तियाँ गिर गयीं। अब उसकी सब हरियाली नष्ट-भ्रष्ट हो गयी और अब वही एक सूखी हुई टहनी उस हरे भरे पेड़का चिह्न रह गयी थी।

परन्तु रुद्रको पाकर इस सूखी हुई टहनीमें जान पड़ गयी थी। इसमें हरी भरी पत्तियाँ निकल आयी थीं। वह जीवन जो अबतक नीरस और शुष्क था अब सरस और सजीव हो गया था। अन्धेरे जंगलमें भटके हुए पथिकको प्रकाशकी झलक आने लगी थी। अब उसका जीवन निरर्थक नहीं बल्कि सार्थक हो गया था।

कैलासी रुद्रकी भोली-भाली बातोंपर निछावर हो गयी। पर वह अपना स्नेह सुखदासे छिपाती थी। इसलिये कि मांके हृदय में द्वेष न हो। वह रुद्रके लिये मांसे छिपकर मिठाइयाँ लाती और उसे खिलाकर प्रसन्न होती। वह दिनमें दो तीन बार उसे उबटन मलती कि बच्चा खूब पुष्ट हो। वह दूसरोंके सामने उसे कोई चीज नहीं खिलाती कि उसे नजर लग जायगी। सदा वह दूसरोंसे बच्चेके अल्पाहारका रोना रोया करती। उसे बुरी नजरसे बचानेके लिये ताबीज और गण्डे लाती रहती। यह उसका विशुद्ध प्रेम था। उसमें स्वार्थकी गन्ध भी न थी।

इस घरसे निकलकर आज कैलासीकी वह दशा थी जो थियेटरमें यकायक बिजली लैम्पोंके बुझ जानेसे दर्शकोंकी होती है। उसके सामने वही सूरत नाच रही थी। कानोंमें वही प्यारी-प्यारी बातें गूँज रही थीं। उसे अपना घर काटे खाता था। उस काल कोठरीमें दम घुटा जाता था।

रात ज्यों-त्यों कर कटी। सुबहको वह घरमें झाड़ू लगा रही थी। यकायक बाहर ताजे हलुवेकी आवाज सुनकर बड़ी फुर्तीसे घरसे बाहर निकल आयी। तबतक याद आ गया आज हलुवा कौन खायगा? आज गोदमें बैठकर कौन चहकेगा? वह

माधुरी गान सुननेके लिये जो हलुआ खाते समय रुद्रकी आँखोंसे, होठोंसे और शरीरके एक-एक अङ्गसे बरसता था कैलासीका हृदय तड़प गया। वह व्याकुल होकर घरसे बाहर निकली कि चलूं रुद्रको देख आऊं। पर आधे रास्तेसे लौट गयी।

रुद्र कैलासीके ध्यानसे एक क्षण भरके लिये भी नहीं उतरता था। वह सोते-सोते चौंक पड़ती, जान पड़ता रुद्र डंडेका घोड़ा दबाये चला आता है। पड़ोसिनोंके पास जाती तो रुद्र हीका चर्चा करती। रुद्र उसके दिल और जानमें बसा हुआ था। सुखदाके कठोरतापूर्ण कुव्यवहारका उसके हृदयमें ध्यान नहीं था। वह रोज इरादा करती थी कि आज रुद्रको देखने चलूंगी। उसके लिये बाजारसे मिठाइयाँ और खिलौने लाती! घरसे चलती पर रास्तेसे लौट आती। कभी दो चार कदमसे आगे नहीं बढ़ा जाता। कौन मुंह लेकर जाऊँ? जो प्रेमको धूर्तता समझता हो, उसे कौनसा मुँह दिखाऊं? कभी सोचती यदि रुद्र मुझे न पहचाने तो? बच्चोंके प्रेमका ठिकाना ही क्या? नयी दाईसे हिल मिल गया होगा। यह खयाल उसके पैरोंपर जंजीरका काम कर जाता था।

इस तरह दो हफ्ते बीत गये। कैलासीका जी उचटा रहता, जैसे उसे कोई लम्बी यात्रा करनी हो। घरकी चीजें जहाँकी तहाँ पड़ी रहतीं, न खानेकी सुधि थी न कपड़ेकी। रात दिन रुद्रहीके ध्यानमें डूबी रहती थी। संयोगसे इन्हीं दिनों बद्रीनाथकी यात्राका समय आ गया। महल्लेके कुछ लोग यात्राकी तैयारियां करने लगे। कैलासीकी दशा इस समय उस पालतू चिड़ियाकी-सी थी जो पिंजड़ेसे निकलकर फिर किसी कोनेकी खोजमें हो।

उसे विस्मृतका यह अच्छा अवसर मिल गया। यात्राके लिये तैयार हो गयी।

[६]

आसमानपर काली घटाएँ छाई हुई थीं और हल्की-हल्की फूहारें पड रही थीं। देहली स्टेशनपर यात्रियोंकी भीड़ थी। कुछ गाड़ियोंपर बैठे थे, कुछ अपने घरवालोंसे बिदा हो रहे थे। चारों तरफ एक हलचल-सी मची थी। संसार-माया आज भी उन्हें जकड़े हुए थी। कोई स्त्रीको सावधान कर रहा था कि धान कट जावे तो तालाबवाले खेतमें मटर बो देना और बागके पास गेहूँ। कोई अपने जवान लड़केको समझा रहा था असाथियोंपर बकाया लगानकी नालिश करनेमें देर न करना और दो रुपये सैकड़ा सूद जरूर काट लेना। एक बूढ़े व्यापारी महाशय अपने मुनीबसे कह रहे थे कि माल आनेमें देर हो तो खुद चले जाइयेगा। और चलतू माल लीजियेगा, नहीं तो रुपया फँस जायगा। पर कोई-कोई ऐसे श्रद्धालु मनुष्य भी थे जो धर्म मग्न दिखाई देते थे। वे या तो चुपचाप आसमानकी ओर निहार रहे थे या माला फेरनेमें तल्लीन थे। कैलासी भी एक गाड़ीमें बैठी सोच रही थी, इन भले आदमियोंको अब भी संसारकी चिन्ता नहीं छोड़ती। वही बनिज व्यापार लेन-देनकी चर्चा। रुद्र इस समय यहाँ होता तो बहुत रोता, मेरी गोदसे कभी न उतरता। लौटकर उसे अवश्य देखने जाऊंगी। या ईश्वर किसी तरह गाड़ी चले, गर्मीके मारे जी व्याकुल हो रहा है। इतनी घटा उमड़ी हुई है, किन्तु बरसनेका नाम नहीं लेती। मालूम नहीं यह

रेलवाले क्यों देर कर रहे हैं। झठमूठ इधर-उधर दौड़ते-फिरते हैं। यह नहीं कि झटपट गाड़ी खोल दें। यात्रियोंकी जानमें जान आये। एकाएक उसने इन्द्रमणिको बाइसिकिल लिये प्लेटफार्मपर आते देखा। उनका चेहरा उतरा हुआ था और कपड़े पसीनोंसे तर थे। वह गाड़ियोंमें झाँकने लगे। कैलासी केवल यह जतानेके लिये कि मैं भी यात्रा करने जा रही हूँ, गाड़ीसे बाहर निकल आयी। इन्द्रमणि उसे देखते ही लपककर करीब आ गये और बोले—क्या कैलासी, तुम भी यात्राको चली?

कैलासीने सगर्व दीनतासे उत्तर दिया—हाँ यहाँ क्या करूँ, जिन्दगीका कोई ठिकाना नहीं, मालूम नहीं कब आँखें बन्द हो जायँ। परमात्माके यहाँ मुँह दिखानेका भी तो कोई उपाय होना चाहिये। रुद्र बाबू अच्छी तरह हैं?

इन्द्रमणि—अब तो जाही रही हो। रुद्रका हाल पूछकर क्या करोगी? उसे आशीर्वाद देती रहना।

कैलासीकी छाती धड़कने लगी। घबराकर बोली—उनका जी अच्छा नहीं है क्या?

इन्द्रमणि—वह तो उसी दिनसे बीमार है जिस दिन तुम वहाँसे निकलीं। दो हफ्ते तक उसने अन्ना-अन्नाकी रट लगाई। अब एक हफ्तेसे खाँसी और बुखारमें पड़ा है सारी दवाइयाँ करके हार गया, कुछ फायदा नहीं हुआ। मैंने सोचा था कि चलकर तुम्हारी अनुनय-विनय करके लिवा लाऊँगा। क्या जाने तुम्हें देखकर उसकी तबीयत सँभल जाय। पर तुम्हारे घरपर आया तो मालूम हुआ कि तुम यात्रा करने जा रही हो। अब किस मुँहसे चलनेको कहूँ। तुम्हारे साथ सलूक ही कौन सा

अच्छा किया था जो इतना साहस करूं। फिर पुण्य कार्य्यमें विघ्न डालनेका भी डर है। जाओ उसका ईश्वर मालिक है। आयु शेष है तो बच ही जायगा अन्यथा ईश्वरी गतिमें किसीका क्या वश।

कैलासीकी आँखोंके सामने अन्धेरा छा गया। सामनेकी चीजें तैरती हुई मालूम होने लगीं। हृदय भावी अशुभकी आशङ्का से दहल गया। हृदयसे निकल पड़ा—"या ईश्वर, मेरे रुद्रका बाल बाँका न हो।" प्रेमसे गला भर आया। विचार किया कि मैं कैसी कठोर हृदया हूँ। प्यारा बच्चा रो-रोकर हलकान हो गया और मैं उसे देखने तक नहीं गयी। सुखदाका स्वभाव अच्छा नहीं, न सही, किन्तु रुद्रने मेरा क्या बिगाड़ा था कि मैंने माँका बदला बेटेसे लिया। ईश्वर मेरा अपराध क्षमा करो। प्यारा रुद्र मेरे लिये हुड़क रहा है। (इस खयालसे कैलासीका कलेजा मसोस उठा था और आंखोंमें आँसू बह निकले) मुझे क्या मालूम था कि उसे मुजसे इतना प्रेम है। नहीं मालूम बच्चेकी क्या दशा है। भयातुर हो बोली– दूध तो पीते हैं न?

इन्द्रमणि—तुम दूध पीनेको कहती हो, उसने दो दिनसे आँखें तक न खोलीं।

कैलासी—या मेरे परमात्मा! अरे कुली! कुली! बेटा, आकर मेरा सामना गाड़ीसे उतार दे। अब मुझे तीरथ जाना नहीं सूझता। ओ बेटा, जल्दी कर, बाबूजी देखो कोई एक्का हो तो ठीक कर लो।

एक्का रवाना हुआ। सामने सड़कपर बग्घियाँ खड़ी थीं। घोड़ा धीरे-धीरे चल रहा था। कैलासी बार-बार झुँझलाती

थी और एक्कावानसे कहती थी, बेटा! जल्दी कर। मैं तुझे कुछ ज्यादे दे दूँगी। रास्तेमें मुसाफिरोंकी भीड़ देखकर उसे क्रोध आता था। उसका जी चाहता था कि घोड़ेके पर लग जाते लेकिन इन्द्रमणिका मकान करीब आ गया तो कैलासीका हृदय उछलने लगा। बार-बार हृदयसे रुद्रके लिये शुभ आशीर्वाद निकलने लगा। ईश्वर करे सब कुशल मंगल हो। एक्का इन्द्र-मणिकी गलीकी ओर मुड़ा। अकस्मात कैलासीके कानमें रोनेकी ध्वनि पड़ी। कलेजा मुँहको आ गया। सिरमें चक्कर आ गया। मालूम हुआ नदीमें डूबी जाती हूँ। जी चाहा कि एक्केपरसे कूद पड़ूँ। पर थोड़ी ही देरमें मालूम हुआ कि कोई स्त्री मैकेसे विदा हो रही है। सन्तोष हुआ। अन्तमें इन्द्रमणिका मकान आ पहुँचा। कैलासीने डरते-डरते दरवाजेकी तरफ ताका। जैसे कोई घरसे भागा हुआ अनाथ लड़का शामको भूखा-प्यासा घर आए। और दरवाजेकी ओर सटकी हुई आँखोंसे देखे कि कोई बैठा तो नहीं है। दरवाजेपर सन्नाटा छाया हुआ था। महाराज बैठा सुरती मल रहा था। कैलासीको जरा ढाढ़स हुआ। घरमें पैठी तो नई दाई पुलटिस पका रही है। हृदयमें बलका संचार हुआ। सुखदाके कमरेमें गयी तो उसका हृदय गर्मीके मध्याह्नकालके सदृश काँप रहा था। सुखदा रुद्रको गोदमें लिये दरवाजेकी ओर एक टक ताक रही थी। शोक और करुणाकी मूर्ति बनी थी।

कैलासीने सुखदासे कुछ नहीं पूछा। रुद्रको उसकी गोदसे ले लिया और उसकी तरफ सजल नयनोंसे देखकर कहा—बेटा रुद्र, आँखें खोलो।

रुद्रने आँखें खोलीं, क्षणभर दाईको चुपचाप देखता रहा

तब यकायक दाईके गलेसे लिपटकर बोला—अन्ना आई ! अन्ना आई !!

रुद्रका पीला मुर्झाया हुआ चेहरा खिल उठा, जैसे बुझते हुए दीपकमें तेल पड़ जाय। ऐसा मालूम हुआ मानों वह कुछ बढ़ गया है।

एक हफ्ता बीत गया। प्रातःकालका समय था। रुद्र आँगनमें खेल रहा था। इन्द्रमणिने बाहरसे आकर उसे गोदमें उठा लिया और प्यारसे बोले—तुम्हारा अन्नाको मारकर भगा दें ?

रुद्रने मुँह बनाकर कहा—नहां रोयेगी।

कैलासी बोली—क्यों बेटा, तुमने तो मुझे बद्रीनाथ नहीं जाने दिया। मेरी यात्राका पुण्य-फल कौन देगा ?

इन्द्रमणिने मुस्कुराकर कहा—तुम्हें उनसे कहीं अधिक पुण्य हो गया। यह तीर्थ

महातीर्थ

है।